इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BPSC-132

भारतीय सरकार और राजनीति

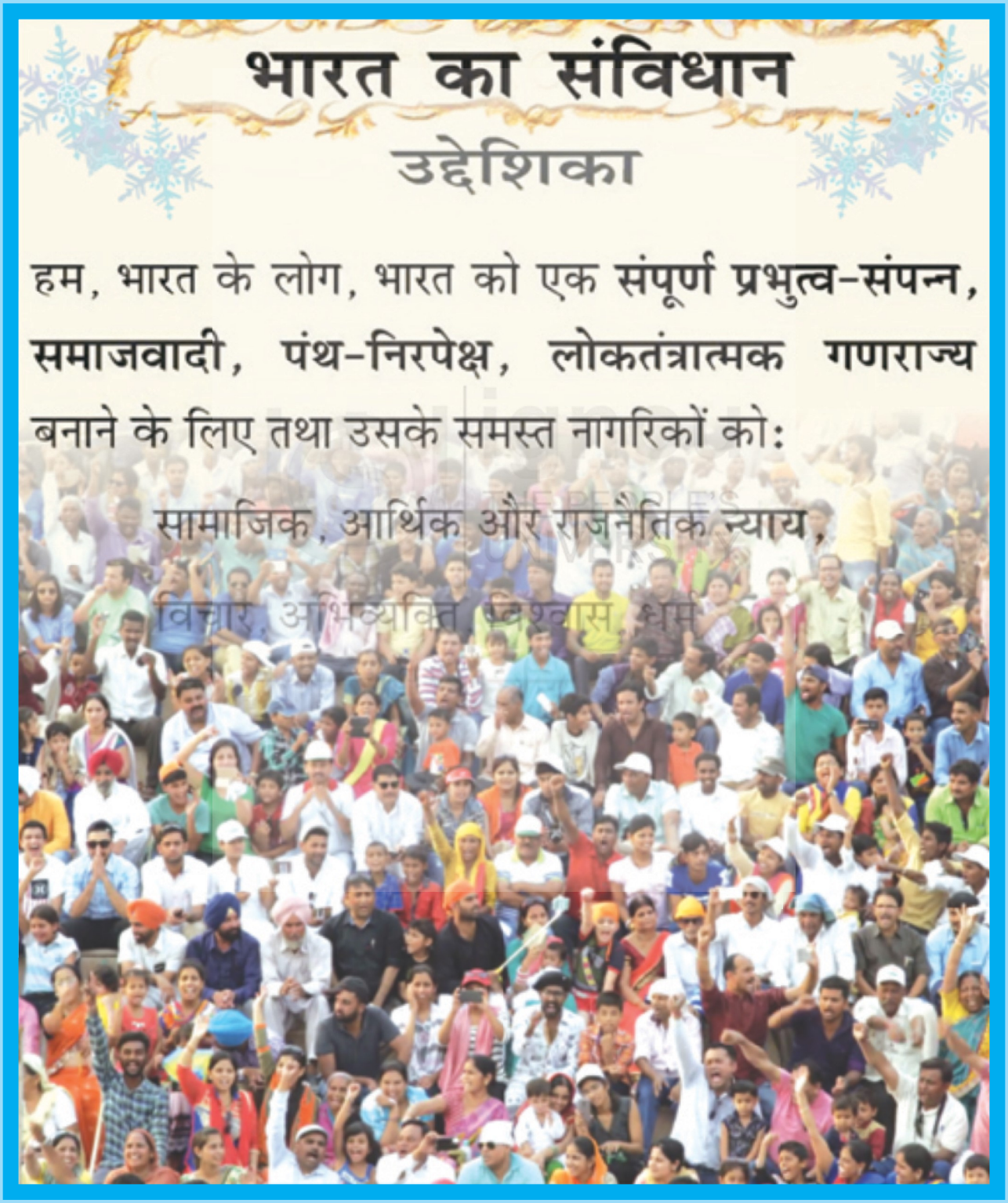

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

BPSC-132

भारतीय सरकार और राजनीति

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रोफेसर डी. गोपाल, अध्यक्ष,
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू,
मैदान गढ़ी, नई–दिल्ली, 110068

प्रोफेसर जगपाल सिंह,
राजनीति विज्ञान संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू,
मैदान गढ़ी, नई–दिल्ली

प्रोफेसर सार्तिक बाग,
राजनीति विज्ञान विभाग,
बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर,
विश्वविद्यालय, राय बरेली, रोड़, लखनऊ

प्रोफेसर ए.के सिंह,
फेडरल अध्ययन केन्द्र,
जामिया हमदर्द विश्वविद्यालय,
नई–दिल्ली

प्रोफेसर अमित प्रकाश,
लॉ एवं गवर्नेंस अध्ययन केन्द्र,
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रोफेसर एस. वी. रेड्डी
राजनीति विज्ञान संकाय,
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू,
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्रोफेसर अनुराग जोशी,
राजनीति विज्ञान संकाय,
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू,
मैदान गढ़ी, नई–दिल्ली

पाठ्यक्रम तैयार करने वाली टीम

खण्ड और इकाई	इकाई लेखक
खण्ड 1 भारतीय राजनीति के अध्ययन के उपागम	
इकाई 1 उदारवादी	डा. दिव्या रानी, कसंल्टेंट राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू
इकाई 2 मार्क्सवादी	प्रोफेसर जगपाल सिंह, इग्नू
इकाई 3 गाँधीवादी	प्रोफेसर जगपाल सिंह, इग्नू
खण्ड 2 भारतीय संविधान	
इकाई 4 मूलभूत विशेषताएं	डा. पी.वी. रमना, पूर्व रिसर्च फैला, आई.डी.ए., नई दिल्ली
इकाई 5 मौलिक अधिकार	डा. दिव्या रानी, कंसल्टेंट, रानीति विज्ञान संकाय, इग्नू
इकाई 6 मौलिक कर्त्तव्य एवं नीति–निर्देशक सिद्धांत	डा. दिव्या रानी, कंसल्टेंट, रानीति विज्ञान संकाय, इग्नू
खण्ड 3 संस्थाऐं	
इकाई 7 विधायिका	प्रोफेसर प्रलय कानूनगो, राजनीति अध्ययन केन्द्र जे.एन.यू.
इकाई 8 कार्यपालिका	प्रोफेसर विजयशेखर रेड्डी, इग्नू
इकाई 9 न्यायपालिका	प्रोफेसर विजयशेखर रेड्डी, इग्नू
खण्ड 4 समाज और राजनीति	
इकाई 10 जाति, वर्ग एवं आदिवासी	प्रो. श्रीकृष्ण (रिटायर्ड), इतिहास विभाग, इंदिरा गाँधी, विश्वविद्यालय, रिवाड़ी, हरियाणा
इकाई 11 जेन्डर	इकाई 24, बी.पी.एस.ई. 212, जयंती आलम द्वारा लिखित तथा इकाई 20, एम.पी.एस.–003 राकेश बटबयाल द्वारा लिखित से सकंलित
इकाई 12 मजदूर एवं किसान	डा. रबिन्द्र नारायण मिश्रा, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, जी.टी.बी.सी.,दिल्ली विश्वविद्यालय
खण्ड 5 धर्म और राजनीति	
इकाई 13 धर्म निरपेक्षता	प्रोफेसर जगपाल सिंह, इग्नू
इकाई 14 साम्प्रदायिकता	डा. राकेश बटब्याल, एसोसिएट प्रोफेसर सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज, जे.एन.यू.
खण्ड 6 भारत में दल एवं दलीय व्यवस्था	
इकाई 15 दल एवं दलीय व्यवस्था	प्रो. अरूण कांति जाना, राज. वि. विभाग, नार्थ बंगाल, यूनिवर्सिटी, दार्जिलिंग

पाठ्यक्रम संयोजक : प्रोफेसर जगपाल सिंह
जनरल एडिटर : प्रोफेसर जगपाल सिंह

अपडेटिंग, वेटिंग एवं प्रूफ रीडिंग

डा. दिव्या रानी
कसंल्टेंट
राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू

अनुवादक

डा. गिर्राज प्रसाद बैरवा
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
राजा गार्डन, नई–दिल्ली, 110015

सामग्री निर्माण

श्री राजीव गिरधर
ए.आर. (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

श्री हेमन्त परीदा
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

दिसम्बर, 2019

© इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2019

ISBN: 978-93-89668-66-7

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश, मिमियोग्राफ या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरुत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : टेसा मीडिया एण्ड कम्प्यूटर, C-206, A.F.Enclave-II, नई दिल्ली

मुद्रक : मैसर्स डी० के० प्रिंटर्स, 5/37 ए, कीर्ति नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली – 110015 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

		पृष्ठ सं.
खण्ड 1	भारतीय राजनीति के अध्ययन के उपागम	7
इकाई 1	उदारवादी	9
इकाई 2	मार्क्सवादी	17
इकाई 3	गाँधीवादी	27
खण्ड 2	भारतीय संविधान	35
इकाई 4	मूलभूत विशेषताएं	37
इकाई 5	मौलिक अधिकार	48
इकाई 6	राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत और मूल कर्त्तव्य	58
खण्ड 3	संस्थाएँ	67
इकाई 7	विधायिका	69
इकाई 8	कार्यपालिका	80
इकाई 9	न्यायपालिका	91
खण्ड 4	समाज और राजनीति	103
इकाई 10	जाति, वर्ग एवं जनजाति	105
इकाई 11	जेन्डर	114
इकाई 12	मजदूर एवं किसान	122
खण्ड 5	धर्म एवं राजनीति	137
इकाई 13	धर्मनिरपेक्षता	139
इकाई 14	सांप्रदायिकता	147
खण्ड 6	भारत में दल एवं दलीय व्यवस्था	155
इकाई 15	दल एवं दलीय व्यवस्था	157

पाठ्यक्रम परिचय

इस पाठ्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों को भारत में शासन एवं राजनीति की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी देना है। इस पाठ्यक्रम में पन्द्रह (15) इकाई है जिन्हें छः (6) खंडों में बाँटा गया है। इस पाठ्यक्रम की शुरूआत प्रथम खंड से होती है जिसमें भारत में राजनीति को समझने की इकाइयाँ शामिल है। खंड दो में भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य एवं नीति–निर्देशक सिद्धांत शामिल है। खंड तीन के अंतर्गत विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका है। खण्ड चार की इकाइयों में वर्ग एवं जाति से संबंधित पहचान की चर्चा की गई है। खण्ड पाँच के अंतर्गत धर्म और राजनीति से संबंधित इकाइयाँ है। जबकि खंड 6 के अंतर्गत दल एवं दलीय व्यवस्था के बारे में है।

इकाइयों के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार से है। खंड एक में तीन इकाइयाँ है जो कि उदारवादी, मार्क्सवादी एवं गाँधीवादी धारणा से संबंधित है। खंड दो में तीन इकाइयाँ है जिनका संबंध भारतीय संविधान, मौलिक अधिकार एवं मौलिक कर्त्तव्यों एवं निर्देशक सिद्धांतों से है। खंड तीन में भी तीन इकाइयाँ है जो कि विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका से संबंधित है। खण्ड चार के अंतर्गत राज्य एवं समाज के बीच रिश्तों का जिक्र है। इसमें इकाई संख्या 10 जाति, वर्ग एवं आदिवासी, इकाई 11 जेन्डर (लैंगिक) और इकाई 12 मजदूर और किसान शामिल है। खंड पाँच में दो इकाई है। इकाई 13 एवं 14। ये धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता से संबंधित है। खंड छः में सिर्फ एक ही इकाई है जो कि दलीय व्यवस्था से संबंधित है।

सभी इकाइयों में अभ्यास प्रश्न दिये गये है। सभी इकाइयों के अध्ययन के पश्चात् आप अभ्यास प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। इकाई के अंत में अभ्यास प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। आप अपने उत्तर की जांच इनसे कर सकते हैं। लेकिन, आप अपने विचार स्वयं ही लिखें। पाठ्यक्रम के अंत में कुछ संदर्भ दिये गये हैं। आप इन संदर्भों को पढ़ सकते हैं।

खण्ड 1
भारतीय राजनीति के अध्ययन के उपागम

खण्ड 1

परिचय

भारतीय राजनीति एक विस्तृत विषय है। इसे किसी विधि या अवधारणा के बिना समझना बहुत कठिन है। इन विधियों या तरीकों को ही हम अवधारणा या उपागम कहते हैं। कई प्रकार की अवधारणाऐं हैं। यह खण्ड तीन प्रमुख अवधारणाओं से संबंधित है। इकाई एक में उदारवादी अवधारणा (उपागम) है। इस उपागम में राजनीति में विभिन्न प्रकार की सहमतियों को बनाने की चर्चा की गयी है तथा किस प्रकार इसका क्षेत्र बदल गया है। इकाई दो के अंतर्गत मार्क्सवादी उपागम की चर्चा की गयी है। यह भौतिकवादी व्याख्या का सिद्धांत है, तथा किस प्रकार से भारतीय राजनीति को समझने के लिए वर्ग गठन तथा वर्ग संघर्ष का इस्तेमाल किया गया है। इकाई तीन में गाँधीवादी दृष्टिकोण है जो कि गाँधीवादी सिद्धांतों जैसे सत्याग्रह, अहिंसा, इत्यादि से संबंधित है तथा इनका प्रयोग भारतीय राजनीति को समझने के लिए भी किया गया है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 उदारवादी*

संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उदारवादी अवधारणा के प्रमुख तत्व

- 1.2.1 संस्थाऐं : राजनीतिक व्यवस्था, राज्य नहीं
- 1.2.2 प्रक्रियायें
- 1.2.3 मूल्य

1.3 राजनीति के अध्ययन की उदारवादी अवधारणा

1.4 उदारवादी अवधारणा का परिवर्तित क्षेत्र

- 1.4.1 नागरिक समाज
- 1.4.2 बहुसंस्कृतिवाद
- 1.4.3 सामाजिक पूँजी

1.5 अवधारणाओं का अभिसरण

1.6 सारांश

1.7 संदर्भ सूची

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान सकेंगे :–

- भारतीय राजनीति के अध्ययन की उदारवादी अवधारणा के प्रमुख तत्वों को परिभाषित करना
- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की उदारवादी अवधारणा को समझना,
- उदारवादी अवधारणा के विभिन्न पहलुओं को परिभाषित करना।

1.1 प्रस्तावना

राजनीति, राजनीतिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं, तथा समाज के विभिन्न वर्गों के मुद्दों को जानने के बारे में हैं। वास्तव में, राजनीति का संबंध जनता को आपस में जोड़ने तथा राज्य एवं गैर–राज्य समूहों एवं संगठनों को आपस में जोड़ने से संबंधित है। यह संबंध लोगों के बीच प्रतिस्पर्धा, विवाद, एवं सहयोग भी बढ़ाता है। तथा राज्य एवं संस्थाऐं सभी वर्गों के हितों का ध्यान रखती है। सभी विद्वानों ने राजनीति को विभिन्न तरह से व्याख्या की है। इन्हें हम अवधारणाऐं एवं प्ररिप्रेक्ष्य के रूप में जानते हैं। भारतीय राजनीति को समझने के लिए विभिन्न अवधारणाऐं हैं, जैसे :– उदारवादी, मार्क्सवादी एवं गाँधीवादी। इस इकाई में आप उदारवादी अवधारणा के बारे में अध्ययन करेंगे। इकाई 2 एवं 3 में आप मार्क्सवादी एवं गाँधावादी अवधारणा के बारे में पढ़ेंगे। जैसा कि आप इकाई 2 में मार्क्सवादी अवधारणा के बारे में पढ़ेंगे, यह अवधारणा राजनीति को वर्ग संबंधों की दृष्टि से देखती है तथा राज्य

*डा. दिव्या रानी, कंसल्टेंट, राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू, नई दिल्ली

विभिन्न वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। इकाई संख्या 3 में आप गाँधीवादी अवधारणा का अध्ययन करेंगे जिसमें, गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य राजनीति को नैतिक एवं आचार संबंधी दृष्टि से देखता है।

उदारवादी परिप्रेक्ष्य जो कि अब इस इकाई में पढ़ेंगे, राजनीति को राजनीतिक संरचना एवं राजनीतिक प्रक्रिया या व्यवस्था की दृष्टि से देखा गया है। इसका प्रमुख संबंध राजनीतिक व्यवस्था में विरोधाभास प्रबंधन पर आम सहमति बनाने का अध्ययन करना है। मार्क्सवादी अवधारणा की भांति, इसका संबंध वर्ग संबंधों से नहीं है। तथा यह अवधारणा राज्य की अवधारणा का भी प्रयोग नहीं करती है। यह राज्य के स्थान पर राजनीतिक व्यवस्था के प्रयोग को प्राथमिकता देती है। तथा यह आपसी तालमेल एवं आम सहमति में विश्वास करती है बजाय वर्ग संबंध या वर्ग संघर्ष के। यह राजनीतिक व्यवस्था के प्रयोग को प्राथमिकता देती है, कि किस प्रकार विरोधाभाषों का प्रबंधन किया जाये तथा किस तरह आम सहमति बनाया जाये। वास्तव में राजनीति को समझने की उदारवादी अवधारणा एक गैर–मार्क्सवादी अवधारणा है। इसे उदारवाद के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए। उदारवादी परिप्रेक्ष्य भारतीय राजनीति को संरचनात्मक–कार्यात्मक या व्यवस्थावादी अवधारणा के रूप में देखता है और [जब हम उदारवाद शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका अर्थ है स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामुदायिक या सामूहिक स्वतंत्रता]। उदारवाद, व्यक्ति की स्वतंत्रता, सहिष्णुता के प्रति कटिबद्ध है। उदारवाद, इंग्लैंड एवं यूरोप में विशिष्ट सत्ता और राजशाही शासन के खिलाफ हुए आंदोलन के कारण अस्तित्व में आया था। इस विरोध का प्रमुख कारण था व्यक्ति को स्वतंत्रता दिलाना तथा राज्य की सत्ता को चुनौती देना।

1.2 उदारवादी अवधारणा के प्रमुख तत्व

भारतीय राजनीति की उदारवादी अवधारणा एक गैर–मार्क्सवादी, संरचनात्मक– कार्यात्मक या व्यवस्थित अवधारणा हैं। इसके प्रमुख तत्व इस प्रकार है।

1.2.1 संस्थाऐं : राजनीतिक व्यवस्था, राज्य नहीं

1980 के मध्य में ''राज्य की वापसी'' पर अधिक जोर दिया गया, लेकिन उदारवादी अवधारणा के प्रभाव के अंतर्गत संरचनात्मक–कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि में राजनीतिक व्यवस्था का प्रयोग किया गया बजाय राज्य के। इस व्यवस्था के कुछ संस्थाएं विद्यमान है जिसमें राजनैतिक दल, हित समूह या नागरिक समाज संगठन शामिल है। ये सामाजिक संरचना जैस जाति, भाषा, धर्म, क्षेत्र, आदिवासी इत्यादि के साथ विचार–विमर्श करते हैं। जब ये आपस में विचार–विमर्श करते हैं तब ये कुछ कार्य भी करते हैं, या इनके विचार–विमर्श के बाद कुछ प्रक्रिया उभर कर सामने आती है जहाँ संगठन के विभिन्न भाग आपस में टकराते हैं, सहयोग करते हैं तथा आम सहमति पर पहुँचते हैं। इसके परिणामस्वरूप एक व्यवस्था या संस्था कायम होती है, इनमें, राजनीतिक संस्थाएं आमतौर पर राजनीतिक दल, प्रभावी/दबाव समूह विधायिका एवं कार्यपालिका शामिल करती है। वास्तव में, यह अवधारणा ही भारतीय राजनीति में लगभग चार दशकों तक 1950 से लगातार कायम रही थी।

1.2.2 प्रक्रियायें

प्रक्रियाओं के अंतर्गत यह अवधारणा विभिन्न संस्थाओं एवं संगठनों के कार्यों का अध्ययन करती है। इन्हें हम राजनीतिक लामबंदी, हित व्यक्त तथा हित एकत्रीकरण के रूप में व्यक्त करते हैं। लोकतंत्र के प्रतिशील होने के संदर्भ में, प्रक्रियाएं भी लोकतांत्रिक हुई हैं, जिससे

लोकतंत्र और मजबूत हुआ है। उदारवादी अवधारणा लोगों की राजनीतिक सहभागिता की पक्षधर है तथा लोगों को जनतंत्र या लोकतंत्र में भाग लेने से उनका राजनीतिकरण होता है। 1960 के अंत तक, जनतांत्रिकरण की प्रक्रिया की शुरूआत हुई थी, जिसने निम्न वर्ग को प्रभावित किया तथा यह प्रक्रिया अभी तक जारी है। इसके परिणामस्वरूप, भारत की परंपरागत एवं सामंती सामाजिक व्यवस्था का पतन हुआ एवं स्वतंत्रता तथा समानता का समावेश हुआ। इसके अतिरिक्त 1970 और 1980 में विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों, नागरिक समाज के संस्थाओं का उदय, तथा बहु–सांस्कृतिवाद, ने देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत किया तथा सभी संस्थाओं को भी मजबूती प्रदान की।

1.2.3 मूल्य

उदारवादी अवधारणा का तीसरा प्रमुख तत्व है मूल्य, अर्थात् स्वतंत्रता, मानव अधिकार एवं समानता। यह मुख्य रूप से व्यक्ति एवं सामुदायिक अधिकारों से संबंधित हैं। राज्य का यह कर्तव्य है कि वह कमजोर वर्गों जातिवादी समूहों, एवं अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करे। हालांकि उदारवादी अवधारणा व्यक्तिगत अधिकारों एवं स्वतंत्रता की वकालत करता है, लेकिन यह सामुदायिक सुरक्षा विशेष तौर पर उनकी भाषा, संस्कृति एवं लेखनी की सुरक्षा की भी वकालत करता है। लोकतांत्रिक अधिकार बिना इनकी रक्षा के बचाया नहीं जा सकता है खासकर भारत जैसे देश में।

1.3 राजनीति के अध्ययन की उदारवादी अवधारणा

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, उदारवादी उपागम, भारतीय राजनीति के अध्ययन के लिए व्यवस्थावादी उपागम का एक बदला हुआ प्रकार है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब उदारवादी दृष्टिकोण को भारतीय राजनीति के अध्ययन में प्रयोग करते हैं तो इसे हम व्यवस्थावादी अवधारणा भी कहते हैं। व्यवस्थावादी उपागम व्यवहारवादी आंदोलन से उभर कर सामने आया था। इसे डेविड ईस्टन ने एवं जैम्स एस. कोलमैन ने सर्वप्रथम शुरूआत की थी, विशेषकर 1950 एवं 1960 में विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन करने के लिये। यह रूपरेखा आधुनिक विकास की रूपरेखा के रूप में भी जानी जाती है। इसका प्रमुख उद्देश्य था विकासशील देशों या समाजों के आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं के विकास का अध्ययन करना। इस अवधारणा के अनुसार विकास का परिप्रेक्ष्य अर्थव्यवस्थावादी विकास की अवधारणा से अलग थी। अर्थशास्त्रीय विचार के अनुसार विकास का मतलब है विकास दर या आधार भूत ढ़ाँचें का विकास। राजनीतिक विद्वानों के अनुसार इसका मतलब है आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं का विकास। इसका प्रमुख लक्ष्य है राजनीतिक संस्थानों या संगठनों का विकास करना, तथा उन संगठनों में आपसी तालमेल या सहमति कायम करना।

इस उपागम में, राजनीतिक व्यवस्था का संबंध राजनीतिक संस्थाओं, संरचना और प्रक्रिया से है। तथा ये तीनों आपस में एक दूसरे के साथ मेल–मिलाप, संघर्ष भी करती है। आपस में संतुलन एवं गैर संतुलन बनाने का भी काम करती है। इस परिस्थिति में राजनीतिक व्यवस्था कायम रहती है ना कि यह व्यवस्था खराब होती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंभिक वर्षों में कई राजनीतिक विद्वानों ने भारतीय राजनीति का अध्ययन करने के लिये इसी उपागम को अपनाया। रजनी कोठारी की पुस्तक ''भारत में राजनीति'' इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है भारतीय स्तर पर राजनीति को समझने के लिये। उनका मानना है कि राजनीतिक व्यवस्था लचीली है तथा यह जीवित रहती है, और उनकी किताब मुख्य रूप से कार्यात्मक व्यवस्था का अनुसरण करती है। इस पुस्तक का इस्तेमाल करके रजनी कोठारी

ने 1950–1960 की काँग्रेस पार्टी को काँग्रेस व्यवस्था के रूप में वर्गीकृत किया था, और 1950–1960 का काल काँग्रेस प्रभुत्व का युग माना जाता है। सी. पी. भांभरी (1974) ने रजनी कोठारी की भारतीय राजनीति के अध्ययन की अवधारणा की आलोचना की थी। उन्होंने इसकी आलोचना उनकी पुस्तक की समीक्षा के अंतर्गत की थी। भांभरी के अनुसार, कोठारी की रूपरेखा भारतीय राजनीति में मुख्य प्रश्न जैसे कि राज्य के चरित्र का वर्गीय होना का निषेद्ध करता है। राजनीतिक सत्ता के वितरण एवं साम्राज्यवाद का भी निषेद्व करता है।

इस रूपरेखा में आर्थिक–पहलू भी गायब है, जैसे कि, भारतीय राजनीति को बिना ट्रेड यूनियन की भूमिका के देखना, बड़े औद्योगिक घरानों की भूमिका, अमीर किसानों की लॉबी एवं भूमिहीन किसानों के संदर्भ में देखना। भांभरी का यह भी मानना है कि कोठारी का भारतीय लोकतंत्र का मॉडल डाहल के समानान्तर है, जो कि समाज को बहुलवादी मानते हैं, तथा लोकतांत्रिक सरकारें बाजार की तरह कार्य करती है, और ये बाजार पूरे दबाव में रहकर कार्य करते हैं। भांभरी, यह भी रेखांकित करते हैं कि कोठारी का विश्लेषण उनकी कमजोरी या सीमा है या फिर उदारवादी उपागम की सीमा है। यह उपागम वर्ग संघर्ष को नहीं मानता है जो कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है। बजाय इसके यह इस बात पर अधिक जोर देता है कि किस प्रकार से व्यवस्था कायम रहती है तथा किस तरह से विभिन्न इकाइयों के मध्य आम सहमति कायम की जाती है। भांभरी के आलोचना के संदर्भ में, कोठारी यह सुझाव देते हैं कि, उनकी पुस्तक मार्क्सवादी अवधारणा पर आधारित नहीं है, या अमेरिकी ब्रांड कार्यात्मक अवधारणा पर। उन्होंने भारतीय मॉडल का उपयोग किया है जो मार्क्सवादी एवं पूँजीवादी दोनों से ही अलग है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि दो प्रमुख सैंद्धांतिक विश्लेषण है : ध्रुवीय तथा बहुलवादी। उन्होंने राज्य की राजनीति को समझने के लिए बहुलतावादी विश्लेषण का प्रयोग किया है।

1970 के दौरान, विभिन्न विद्वानों ने अपनी शोध में व्यवस्थावादी उपागम का प्रयोग किया था। उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों, जाति, धर्म, भाषा, नेतृत्व, चुनाव व दबाव समूह को भी शामिल किया था। काँग्रेस दल का अध्ययन करने में उन्होंने प्रमुख रूप से उदारवादी उपागम का सहारा लिया था। रिचर्ड सिसन, और पॉल आर. बास ने राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में काँग्रेस का अध्ययन किया था। लेकिन 1970 के अंत तक समाज में परिवर्तन हुआ जिसने राज्य की स्वरूप और लक्षण को भी परिवर्तित किया। इस परिवर्तन का प्रमुख कारण था भूमि सुधार, हरित क्रांति एवं कल्याणकारी नीतियां। लेकिन भारतीय राजनीति में उदारवादी उपागम परिवर्तन लाने में असमर्थ था। इकबाल नारायण (1976) ने भारत में राजनीति के विश्लेषण के लिए इस सिद्धांत का इस्तेमाल किया।

1970 के पश्चात् उदारवादी उपागम में परिवर्तन देखने को मिला है। यह राजनीतिक व्यवस्था के बजाय अब राज्य की अवधारणा का प्रयोग करने से परहेज नहीं रखती है। 1980, में ''राज्य की वापसी'' के संबंध में जोया हसन ने राज्य के अध्ययन के लिए कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर जोर दिया था। इसमें राज्य से संबंधित प्रमुख साहित्य मौजूद था। इस साहित्य में राज्य को मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य के स्थान पर स्वायत्त संस्था के रूप में देखा गया है। राज्य किसी वर्ग या समूह का एजेन्ट नहीं था बल्कि यह स्वतंत्र रूप से सभी वर्गों एवं समूहों के हित का कार्य कर रहा था। यह अवधारणा सांख्यिकी अवधारणा मानी जाती है। लेकिन इस अवधारणा की भी सीमाऐं हैं क्योंकि यह भारतीय समाज के विभिन्न समूहों की भूमिका को कम महत्व देती है।

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) उदारवादी उपागम के प्रमुख तत्व क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीति के अध्ययन में उदारवादी उपागम, संरचनात्मक कार्यात्मक अवधारणा से किस प्रकार संबंधित है? संक्षिप्त में व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 उदारवादी अवधारणा का परिवर्तित क्षेत्र

1950 से उदारवादी उपागम में काफी महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला है। पिछले कुछ समय में 1950–60 के इसके प्रमुख तत्वों का मार्कसवादी उपागम के कुछ तत्वों के साथ भी अभिसरण हुआ है। अब यह राज्य की अवधारणा का प्रयोग करने से भी हिचकिचाती नहीं है तथा यह सामाजिक परिवर्तन की गतिविधियों का भी अध्ययन करती है या लोकतांत्रिक मूल्यों का। यह अवधारणा अब जनता को लामबंद करने, बहु–संस्कृतिवाद, सामाजिक पूँजी या चुनावी राजनीति का भी अध्ययन करती है।

1.4.1 नागरिक समाज

उदारवादी उपागम का प्रमुख तत्व व्यक्ति की स्वतंत्रता है, लेकिन जब हम राष्ट्र या राज्य के बारे में बात करते हैं तो इसमें समुदाय, जाति समूह, वंचित वर्ग एवं उनके अधिकारों की रक्षा भी शामिल है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में, सभी नागरिकों को मौलिक अधिकार दिये गये हैं जो कि सभी को सुरक्षा प्रदान करते हैं। लेकिन कई ऐसे भी उदाहरण है जहाँ पर राज्य नागरिकों की रक्षा करने में असफल रहा हैं। उदारवादी अवधारणा व्यक्तियों के लोकतांत्रिक अधिकार से संबंधित है। नागरिक समाज संगठन नागरिक समाज से अलग है। जैसा कि नीरा चंडोक ने व्याख्या की है, नागरिक समाज वह स्थान है जो कि राज्य एवं परिवार के बीच में होता है। उदारवादी उपागम संगठनों एवं व्यक्तियों के अधिकारों की व्याख्या करता है। यह व्यक्ति की अभिव्यक्ति के अधिकार, संठनन बनाने का अधिकार,

विरोध जताने का अधिकार, तथा जन राय बनाने से संबंधित है। यह हमें राज्य एवं समाज के बीच संबंधों को बताने में मदद करता है।

1.4.2 बहुसंस्कृतिवाद

उदारवादी उपागम न केवल व्यक्तियों के अधिकारों की पहचान करता है बल्कि वह समूह के अधिकारों को भी पहचानता है। किसी भी विविधता वाले समाज में, सभी विविध समूहों के अधिकारों को पहचानना उनको प्रतिनिधित्व का अधिकार देना तथा वितरित न्याय व्यवस्था बहुसंस्कृतिवाद का प्रतीक है। जैसा कि पारेख (2006) ने बताया कि कोई भी बहुसांस्कृतिक समाज विभिन्न समूहों के माँगों की अनदेखी नहीं कर सकता है। बहुसंस्कृतिवाद, व्यक्तिगत उदारवाद के अलावा व्यक्तियों को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में देखता है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति संस्कृति के ढाँचें में बढ़ता है तथा उसी में जीवित रहता है। वे अपने सामाजिक–संबंध भी इसी सांस्कृतिक व्यवस्था में बनाते हैं तथा उसी में विचरित करते हैं। ये सभी सांस्कृतिक समुदाय मुख्यतौर से विभिन्न अधिकारों की माँग करते हैं ताकि वे अपनी सामुहिक पहचान बरकरार रख सके। ये अधिकार समूह, सामूहिक या संप्रदाय अधिकार के रूप में पहचाने जाते हैं। महाजन (2002) ने यह बताया कि बहुसंस्कृतिवाद का संबंध समानता के प्रश्न से हैं। इसका प्रमुख संबंध विभिन्न समुदायों का साथ–साथ जीवनयापन करने से है जो विभिन्न समुदायों के प्रजातात्रिक अधिकारों से संबंध नहीं दर्शाता है। उनका तर्क है कि बहुसंस्कृतिवाद बहुलवाद एवं विविधता से अलग है। जहाँ पर बहुलवाद का संबंध विभिन्न समुदायों के आपसी मेलजोल से हैं, यहीं पर बहुसंस्कृतिवाद का संबंध जनतंत्र है। यह विभिन्न समुदायों को सांस्कृतिक अधिकार प्रदान करने की बात करता है ताकि ये समुदाय अपनी संस्कृति, भाषा, लेखनी को कायम रख सके।

1.4.3 सामाजिक पूँजी

1990 से सामाजिक पूँजी की अवधारणा का प्रयोग विभिन्न समुदायों के बीच संबंधों को जानने के लिये किया जा रहा है। यह एक प्रकार से नागरिक समाज एवं जनतंत्र के अस्तित्व में होने का इशारा है। यह अवधारणा टोक्वेली के सिद्धांतों से ली गयी है तथा इटालियन राजनीतिक विचारक रोबर्ट पुटनम ने इसे अपनी पुस्तक ''मेकिंग डेमॉक्रेसी वर्क : सिविक ट्रेडिशंस इन मॉर्डन इटली'' में भी प्रयोग किया है। सामाजिक पूँजी विभिन्न समुदायों में अपनी मेल–मिलाप तथा नेटवर्क स्थापित करने के लिये जाना जाता है। ये समुदाय आपस में एक दूसरे के समान मूल्यों एवं विश्वासों को साझा करते हैं। नवीन सामाजिक आंदोलनों के उदय के कारण, इस परिप्रेक्ष्य की महत्ता को भी इसमें शामिल किया गया है। आशुतोष वार्ष्णेय की पुस्तक ''जातिय विवाद एवं नागरिक जीवन'', में भारत में हिन्दु एवं मुस्लिम के अंतर्गत इस रूपरेखा को प्रयोग किया, जिसमें भारत के छः शहरों में जातिय दंगों के अध्ययन किया गया है जो ट्रोक्वेली की परंपरा से प्रभावित है।

1.5 अवधारणाओं का अभिसरण

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजनीति के अध्ययन के लिए दो प्रमुख उपागमों का प्रयोग किया जाता है : गैर–मार्क्सवादी तथा मार्क्सवादी। अपने उदारवादी उपागम की विशेषताओं के बारे में पढ़ा होगा। आप मार्क्सवादी उपागम के बारे में इकाई संख्या 2 में पढ़ेंगे। ये दोनों उपागम परंपरागत रूप से एक दूसरे के साथ नहीं जुड़ी हुई हैं। ये दोनों उपागम 1980 से उतनी कठोर नहीं है जितनी पहले थी। इन दोनों के बीच अब आपसी मेलजोल या अभिसरण हो गया है। ये दोनों अब राज्य, राजनीतिक व्यवस्था या इन दोनों का प्रयोग प्रायः करते हैं, इनसे जुड़े प्रश्नों का उत्तर देते हैं। 1980 के बाद उदारवादी एवं मार्क्सवादी

उपागमों के बीच अभिसरण हुआ है। इसका उदाहरण हमें कई विद्वानों के लेखों जैसे फ्रेसिंस फ्रेकल, रूडोल्प एवं रूडोल्फ तथा प्रणव बर्धन के लेखों में मिलता है। फ्रेंसिन फ्रेंकल ने ऐतिहासिक मतभेदों का जिक्र किया है विशेषकर विकासात्मक योजना एवं संस्थात्मक राजनीति के बीच में। उन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक मुद्दों के बीच अंतर बताया है। बर्धन, जो कि एक नव मार्क्सवादी विचारक है, उन्होंने इसके विपरीत यह तर्क दिया कि भारतीय राज्य एक स्वायत्त संस्था है, जो विभिन्न वर्गों के बीच सत्ता के संबंधों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जबकि रूडोल्फ ने राज्य को केन्द्रिय धुरी बताया है तथा भारतीय राजनीति वर्ग राजनीति की तरफ झुकी हुई है। यह तीसरे एक्टर के रूप में कार्य करती है, पूँजी एवं श्रम के बीच में। भारतीय राज्य ''माँग'' और कमांड राजनीति के बीच कार्य करता है। माँग की राजनीति में यह विभिन्न वर्गों की माँग का सामना करता है, जैसे – किसान और विद्यार्थी।

अभ्यास प्रश्न 2

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) उदारवादी उपागम के क्षेत्र में हुए परिवर्तन की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय राजनीति के अध्ययन के लिए उदारवादी एवं मार्क्सवादी उपागमों के अभिसरण पर संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.6 सारांश

भारत में राजनीति या भारत में राज्य की राजनीति को दो परिप्रेक्ष्यों में समझा जाता है। मार्क्सवादी तथा गैर–मार्क्सवादी। (मुख्य तौर पर उदारवादी) उदारवादी उपागम, जिसे आपने पढ़ा है उसने भारतीय राजनीति में 1950 एवं 1960 में अपना प्रभुत्व जमाया था। इसका प्रमुख ध्यान संस्थानों के अध्ययन करने में था तथा किस तरह से संस्थाऐं अपनी इकाइयों को कायम रखती है। इसने राजनीतिक व्यवस्था के प्रयोग को प्राथमिकता दी बजाय राजनीति में राज्य के प्रयोग के। उत्तर–औपनिवेशिक काल में, यह सामाजिक विज्ञान में व्यवहारवादी आंदोलन की उपज थी। इसे हम व्यवस्थावादी, आधुनिक या विकासात्मक रूपरेखा के रूप में भी जानते हैं। यह मार्क्सवाद के विकल्प के तौर पर कार्यरत थी। 1980 के बाद उदारवादी उपागम में भी परिवर्तन देखने को मिला। इसने कुछ

शब्दों के प्रयोग में लचीलापन दिखाया जैसे राज्य एवं राजनीतिक अर्थशास्त्र। इसके क्षेत्र में भी विस्तार हुआ तथा इसमें नागरिक समाज, सामाजिक पूँजी, तथा बहु–संस्कृतिवाद को भी शामिल किया गया था। उदारवादी उपागम का प्रमुख उद्देश्य लोक तंत्र से संबंधित प्रश्नों या मुद्दों का हल करना है।

1.7 संदर्भ सूची

कोठारी, रजनी (1973), *पॉलिटिक्स इन इंडिया,* ओरियंट ब्लैक स्वान।

चंडोक, नीरा (1995), *स्टेट एंड सिविल सोसाइटी इन पोलिटिकल थ्योरी,* नई–दिल्ली, सेज प्रकाशन।

नारायण, इकबाल (1976), *पोलिटिक्स ऑफ स्टेट इन इंडिया,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

पारेख, भीखू (2006), *रिथिंकिंग ऑन मल्टीकल्चरिज्म,* न्यूयार्क, पालग्रेव, मैक्मिलान।

भांभरी, सी. पी. (1974), *फंक्शनलिज्म इन पोलिटिक्स साइंस,* अप्रैल–जून – 1978, पेज 185–191।

महाजन, गुरप्रीत (1998), *डेमोक्रेसी, डेसेंट एंड सोशल जस्टिस,* ऑक्सफोर्ड, लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

महाजन, गुरप्रीत (2002), *'द मल्टीकल्चरल पातः इश्यूस ऑफ डारवरसिटी एंड डिसक्रीमिनेशन इन डेमोक्रेसी'*, नई–दिल्ली, सेज प्रकाशन।

हसन, जोया (2000), *स्टेट एंड पोलिटिकल इन इंडिया,* नई–दिल्ली सेज प्रकाशन।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) संस्थाऐं, संरचना एवं मूल्य, उदारवादी उपागम के प्रमुख तत्व हैं।

2) उदारवादी उपागम व्यक्ति के लोकतांत्रिक अधिकारों एवं राजनीतिक संस्थाओं पर अधिक बल देता है। इसके ऊपर व्यवहारवादी उपागम का बहुत प्रभाव पड़ा 1950 एवं 1960 के दशक में। व्यवहारवादी उपागम ने राजनीति विज्ञान में संरचनात्मक–कार्यात्मक व्यवस्था पर अधिक बल दिया था। उदारवादी उपागम मुख्य तौर पर राजनीति को संरचनात्मक एवं कार्यात्मक व्यवस्था के रूप में देखता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1) 1980 के बाद उदारवादी उपागम के क्षेत्र में विस्तार हुआ है। 1950–1960 की तरह यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था के स्थान पर राज्य एवं राजनीतिक अर्थव्यवस्था का प्रयोग करने से परहेज नहीं करता है। अब यह सामाजिक–परिवर्तन के अध्ययन को भी शामिल करता है तथा संस्थाओं में आम सहमति बनाये रखने की भी कोशिश करता है। उदारवादी उपागम नागरिक, समाज, नागरिक समाज आंदोलन एवं सामुदायिक संबंधों को भी अपने क्षेत्र में शामिल करता है।

2) दोनों अवधारणाऐं अपनी–अपनी प्राथमिकताओं एवं अपने विचारों का प्रयोग करती है तथा दोनों उपागम आपस में अभिसरण की प्रक्रिया से भी प्रभावित है। दोनों ही उपागम राज्य, राजनीतिक अर्थव्यवस्था, संस्थाऐं, राजनीतिक प्रक्रियाऐं एवं परिवर्तन का प्रयोग करते हैं।

इकाई 2 मार्क्सवादी अवधारणा*

संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मार्क्सवादी अवधारणा का अर्थ एवं क्षेत्र

2.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण एवं भारत में राजनीति विज्ञान

2.4 वर्ग संबंध

2.4.1 मार्क्सवादी दृष्टिकोण और ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ग

2.5 आन्दोलन

2.5.1 कृषक एवं किसान आंदोलन

2.5.2 मजदूर वर्ग आंदोलन

2.6 भारतीय राज्य

2.7 सारांश

2.8 संदर्भ सूची

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे :–

- भारतीय राजनीतिक प्रक्रिया की व्याख्या करने में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समझाना।
- क्लासिकल एवं नव–मार्क्सवादी दृष्टिकोण के बीच अंतर को रेखांकित करना।
- मार्क्सवादी अवधारणा के अध्ययन के प्रमुख विषयों की पहचान करना।
- उदारवादी अवधारणा एवं मार्क्सवादी अवधारणा के बीच अंतर को समझना।

2.1 प्रस्तावना

मार्क्सवादी अवधारणा समाज के अध्ययन का एक रास्ता है। सामान्यत, सोवियत संघ के 1980 में विघटन के बाद तथा विश्व के कई भागों में, गैर–मार्क्सवादी दलों के उदय के बाद यह प्रश्न उठने लगा कि वर्तमान में मार्क्सवाद प्रासंगिक है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया जा सकता है :– एक, मार्क्सवाद एक दर्शन है, जो कि विश्व को बदलने की बात करता है, तथा दूसरा मार्क्सवाद एक दृष्टिकोण है, जो कि समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाता है तथा इतिहास की उत्पति की बात करता है। समाज में परिवर्तन के बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है जैसा कि, मार्क्सवाद ने बताया है। लेकिन मार्क्सवाद समाज को बदलने का एक औजार है, या राजनीति को समझने का एक दृष्टिकोण है जैसा कि कई विद्वानों ने प्रयोग किया है। इसे ही हम मार्क्सवादी दृष्टिकोण या धारणा कहते हैं। यह इकाई भारत में राजनीति को समझने की मार्क्सवादी धारणा के बारे में चर्चा करेंगे।

*प्रोफेसर जगपाल सिंह, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

2.2 मार्क्सवादी अवधारणा का अर्थ एवं क्षेत्र

भारतीय राजनीति में मार्क्सवादी अवधारणा के कुछ प्रमुख आधारभूत तत्व है। ये आधारभूत तत्व समाज को बदलने में तथा समाज की व्याख्या करने में मदद करते हैं। अगर हम इसे दूसरे तरीके से समझें तो मार्क्सवादी अवधारणा द्वंदात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत को लागू करता है या फिर ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांत को लागू करता है जो किसी वर्ग संघर्ष तथा वर्ग उत्पीड़न को समाप्त करने का सुझाव देता है। द्वंदात्मक भौतिकवाद के अनुसार, समाज में कुछ वर्ग होते हैं। इन वर्गों के बीच आपसी संबंध को ही हम सामाजिक संबंध कहते हैं तथा ये संबंध ही बाद में उत्पादन के संबंध में बदल जाते हैं। उत्पादन के संबंध तथा सामाजिक संबंध ही बाद में उत्पादन के कारक बन जाते हैं। उत्पादन के तत्वों में वर्ग, संसाधन तथा साधन शामिल हैं, या वे साधन जो कि उत्पादन की वस्तुऐं हैं। उत्पादन की शक्तियों में शामिल है वर्ग, संसाधन एवं औजार।

उत्पादन के सामाजिक संबंध उत्पादन के साधन एवं उनके मालिकाना हक को दर्शाता है। जिसमें भूमि, उद्योग एवं उत्पादन की अन्य इकाई भी शामिल है तथा मजदूर वर्गो के संबंध का तरीका भी उसमें शामिल किया गया है। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन तथा उत्पादन की शक्तियों में परिवर्तन ही समाज में परिवर्तन या बदलाव लाता है जिसमें समाज एक स्तर से दूसरे स्तर की ओर अग्रसर होता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण वर्ग संबंधों को रेखांकित करता है तथा समाज के अन्य पहलूओं जैसे राज्य, राजनीति, संस्कृति, धर्म इत्यादि को भी रेखांकित करता है। इन्हें ही मूलभूत आधार कहा जाता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रमुख सिद्धांत इस आधार एवं मूलभूत आधार के बीच संबंधों की व्याख्या करता है। मार्क्सवादी अवधारणा के दो प्रमुख समूह है। एक समूह यह मानता है कि वर्ग ही मूल आधार को निर्धारित करता है। जबकि अन्य समूह यह मानता है कि वर्ग कभी भी गैर वर्गीय आधार को निर्धारित नहीं करता है अर्थात आधार मूलभूत आधार को निर्धारित नहीं करता है। मूलभूत आधार को स्वायत्ता प्राप्त है। पहले वाले समूह को हम क्लासिकल या यांत्रिक मार्क्सवादी अवधारणा के रूप में जानते हैं तथा दूसरी अवधारणा नव–मार्क्सवादी अवधारणा है। नव–मार्क्सवादी अवधारणा ग्राम्सी से प्रभावित है जो कि फ्रेंकफर्ट स्कूल से संबंधित है तथा राल्फ मिलिबैंड से भी प्रभावित है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण किसी देश की आंतरिक राजनीति को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संबंध में देखती है। यह राष्ट्रीय राजनीति एवं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के बीच संबंधों की व्याख्या करती है तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठनों जैसे विश्व बैंक, तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की भूमिका की भी व्याख्या करती है।

2.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण एवं भारत में राजनीति विज्ञान

भारतीय राजनीति को समझने के लिये क्लासिकल एवं नव–मार्क्सवादी दोनों अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। मार्क्सवादी अवधारणा भारतीय राजनीति को जानने के लिये मार्क्सवादी राजनीति कार्यकर्ताओं, राजनीतिज्ञों एवं राजनीतिक दलों द्वारा प्रयोग में लायी जाती है। आपने इकाई एक में उदारवादी अवधारणा के बारे में पढ़ा होगा।

मार्क्सवादी अवधारणा की तुलना में उदारवादी धारणा भारतीय राजनीति को जानने के लिये ज्यादा प्रयोग में लायी जाती है। क्योंकि, मार्क्सवादी धारणा का प्रमुख उद्देश्य वर्ग संबंधों की व्याख्या करना तथा राज्य की भूमिका के बारे में अध्ययन करना है, लेकिन इस अवधारणा का प्रमुख सिद्धांत है वर्ग संबंधों में परिवर्तन की व्याख्या करना, मजदूर एवं किसानों के आंदोलनों के मुद्दों को ऊपर उठाना, राज्य की भूमिका के बारे में जानकारी देना तथा राज्य एवं विभिन्न वर्गों के बीच आंतरिक संबंधों का पता लगाना इत्यादि। यहाँ यह बात बहुत

महत्वपूर्ण नोट करने वाली है कि मार्क्सवादी अवधारणा का प्रयोग सामाजिक विज्ञानों में कई विद्वानों द्वारा किया गया है।

1980 से एक नयी अवधारणा, नव–मार्क्सवादी इतिहासकार रणजीत गुहा द्वारा जोड़ी गई है जिनके ऊपर ग्राम्सी का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। इन विद्वानों के ऊपर अधीनस्थ अवधारणा का भी अधिक प्रभाव पड़ा था। अर्थात् साधारण व्यक्ति भी अपनी चेतना के अनुसार विकास करते है। वे अपना निर्णय अपनी चेतना के अनुसार लेते हैं तथा उनके ऊपर किसी बाहरी ताकत का दबाव नहीं होता है। जो मार्क्सवादी विचारक है उन्होंने इस अवधारणा की आलोचना की है क्योंकि उनके अनुसार यह गैर–मार्क्सवादी अवधारणा है।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) मार्क्सवादी अवधारणा का अर्थ क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) क्लासिकल मार्क्सवादी अवधारणा एवं नव–मार्क्सवादी अवधारणा के बीच क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) उदारवादी एवं मार्क्सवादी अवधारणाओं के बीच क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 वर्ग संबंध

मार्क्सवादी दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण पहलू वर्ग संबंध है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, वर्ग संबंध उत्पादन का सामाजिक संबंध है। इनमें उत्पादन के साधन, कार्य करने के तरीके, उनका वितरण इत्यादि शामिल है। साधनों में, भूमि, प्राकृतिक संसाधन, तकनीक तथा उत्पादन के तरीके शामिल है, कार्य संबंधों में श्रम शामिल है, उत्पादन का वितरण का

मतलब मजदूरी का वितरण है। अर्थव्यवस्था में तीन प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की गयी है। कृषि में मुख्य रूप से भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन जैसे वन, उद्योग, सेवा क्षेत्र और अनौपचारिक अर्थव्यवस्था जैसे क्षेत्र शामिल हैं। उत्पादन के साधनों पर अध्पित्य के आधार पर ही विभिन्न वर्गों की पहचान की जा सकती है तथा विभिन्न अर्थव्यवस्था क्षेत्र में उन्हें पहचाना जा सकता है। मार्क्सवादी अवधारणा भारत में, मुख्य रूप से वर्ग संबंध को स्थापित करने लिये प्रयोग किया जाता है खासकर कृषि और उद्योग में। लेकिन कुछ अन्य प्रयास भी हुए है जहाँ वर्ग का संबंध अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में लिया जाता है। (जन बौमेन, 1996, कैरोल उपाध्याय, 2016)। लेकिन इनका संबंध क्लासिकल मार्क्सवादी अवधारणा से नहीं है बल्कि ये गैर–आर्थिक पहलू को भी शामिल करती है।

2.4.1 मार्क्सवादी दृष्टिकोण और ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ग

मार्क्सवादी अवधारणा के अनुसार भारत में कृषि क्षेत्र में वर्गों की पहचान इस प्रकार की गयी हैः जिनके पास जमीन है या जमीन के मालिक है तथा उनके पास अन्य संसाधन है कृषि करने के उनका एक वर्ग है, दूसरा वर्ग वह है जो जमीन में काम करता है, ऐसे लोगों का क्या संबंध है जो जमीन में काम करते है या अन्य संसाधनों में लगे है तथा उनकी मजदूरी किस आधार पर वितरित की जाती है। इसी को आधार मानकर 1986 में उत्सा पटनायक ने अपनी पुस्तक (कृषक वर्ग अंतर) में कृषि क्षेत्र में वर्गों की पहचान की है। उन्होंने हरियाणा के संदर्भ में इनकी पहचान की है। इनमें ग्रामीण अमीर वर्ग (जमींदार वर्ग), अमीर किसान और मध्यम किसान, तथा ग्रामीण गरीब, छोटे एवं गरीब किसान तथा भूमिहीन किसान हैं। जो ग्रामीण अमीर वर्ग है या जमींदार है वह जमीन का मालिक होता है तथा अन्य संसाधनों का भी मालिक होता है, वे अक्सर जमीन में काम नहीं करते बल्कि गरीब लोगों या मजदूरों से काम करवाते हैं।

हालांकि मध्यम वर्गीय किसान के परिवार के लोग अपनी जमीन में काम करते है लेकिन वे भी अमीर किसानों की तरह दूसरे की जमीन मे काम नहीं करते हैं। जो ग्रामीण गरीब वर्ग है उनके पास जमीन नहीं होती है तथा वे अन्य संसाधनों के भी मालिक नहीं होते, जिससे वे अपनी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाते। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए वे दूसरों की जमीन पर काम करने को मजबूर होते हैं। पटनायक ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण को आधार बनाकर ऐसे वर्गों की पहचान की है जो कि भूमिहीन है तथा उन्होंने हरित क्रांति को देखा है तथा पूँजीवाद के विकास को भी एक हद तक देखा है। लेकिन जहाँ पूँजीवाद का विकास नहीं हुआ है वहाँ पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने ऐसे वर्गों की पहचान इस प्रकार से की है :– सामंती जमींदार, जो जमीन के मालिक है तथा वे अपनी जमीन पर दूसरों से काम करवाते है या साझींदार होते हैं तथा उनकी स्थिति आर्थिक उत्पीड़न से भी प्रभावित होती है तथा गैर–आर्थिक प्रभुत्व की होती है। ऐसे क्षेत्रों में तकनीक का विकास परंपरागत होता है बजाय पूँजीवादी देशों की तुलना में तथा जहाँ पर वर्ग गठन आसान है। मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य सामान्यता वर्गों की पहचान में जाति की भूमिका को नजरअंदाज करते हे। इस प्रवृत्ति से आगे बढ़कर एक अन्य मार्क्सवादी विचार गैल ओमवेट ने अपनी पुस्तक, (जमीन, जाति एवं भारतीय राज्यों में राजनीति) के अंतर्गत यह दर्शाया कि ग्रामीण समाज में वर्ग विभाजन जाति वर्चस्व से प्रभावित होता है। यह बिल्कुल सत्य है क्योंकि कुछ राज्यों में कृषि में पूँजीवाद का भी विकास हुआ है जैसे कि पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र एवं गुजरात तथा बिहार जहाँ आज भी सामंती व्यवस्था कायम है और यह एक पिछड़ा राज्य है।

2.5 आन्दोलन

मार्क्सवाद निम्न वर्गों के प्रति सहानुभूति रखता है, जिनमें, खेती, मजदूर, मजदूर या किसान शामिल हे। इसका उद्देश्य वर्ग शोषण को समाप्त करना है। मार्क्सवादी अवधारणा वर्गों की भौतिक स्थिति के अध्ययन पर विशेष जोर देता है तथा उनके संबंधों पर भी जोर देता है एवं उनकी स्थिति में सुधार करने का प्रयास करता हैं। उनके प्रयासों में सामूहिक कार्यवाही एवं आंदोलन शामिल है। यद्यपि मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य भारत में विभिन्न समाज के वर्गों के आंदोलन के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन इसका प्रमुख प्रयोग किसान आंदोलन और मजदूर आंदोलन पर विशेष तौर पर किया जाता है। ये आंदोलन औपनिवेशिक एवं उत्तर औपनिवेशिक काल के समय के हैं। इनमें कुछ उदाहरण यहाँ प्रमुख रूप से दिया जा रहा है जिसे मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में प्रयोग किया गया है :–

2.5.1 किसान एवं कृषक आंदोलन

यद्यपि कृषक एवं किसानों का प्रयोग एक साथ किया जाता है, लेकिन इन दोनों में अंतर भी है। कृषक एक सामान्य वर्ग या श्रेणी है जबकि किसान खेती करने वाले लोग हैं जिनके पास अपनी जमीन एवं संसाधन है। कृषक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य कृषि में वर्गों का पहचान करना, वर्ग गठन की प्रक्रिया, सामाजिक एवं आर्थिक संबंध, कर्ज, सामाजिक उत्पीड़न की प्रकृति तथा आर्थिक शोषण की प्रकृति इत्यादि का पता लगाना है। कृषकों की स्थिति का अध्ययन करने, उनकी माँगों को उठाने तथा राज्य की भूमिका का पता लगाने में इसका प्रमुख योगदान है। औपनिवेशिक भारत में कृषक आंदोलन में मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य ने निम्न वर्गों की पहचान की है:– वो किसान जो जमींदारों की जमीन पर काश्तकारी करते हों, जमींदार, साहूकार एवं औपनिवेशिक सरकार के अफसर। इसने यह भी समझाया कि किस तरह से काश्तकारों का शोषण किया जाता है, उन्हें जमीन से बेदखल किया जाता है यदि उन्होंने कर्ज नहीं चुकाया, शारीरिक प्रताड़ना देना और जाति के आधार पर बदसलूकी करना इत्यादि। ये सारी शोषित वर्ग जमींदार साहूकार, ये सब एक दूसरे के साथ मिले हुए थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मार्क्सवादी अवधारणा का ध्यान भूमि सुधार की तरफ हो गया था। भूमि सुधार के लिये आंदोलन तथा भूमि सुधार का प्रभाव इसका प्रमुख केन्द्र–बिंदु था। भूमि सुधारों को अध्ययन करने के लिये इसने काश्तकारों को भूमि का मालिकाना हक दिलाने का प्रयास किया था, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन तथा भूमि का वितरण किया। इसने भूमि सुधार की सफलता का भी आकलन किया। जिन विद्वानों ने मार्क्सवादी उपागम का अध्ययन किसान आंदोलन के लिये किया वे हैं – धनाग्रे, सुनील सेन माजिद सिद्दकी, गिरिश मिश्रा इत्यादि।

भारत में मार्क्सवादी उपागम का प्रयोग करते हुए रणजीत गुहा ने यह दलील दी कि औपनिवेशिक काल में, किसानों ने जमींदारों के खिलाफ विरोध नहीं जताया तथा ब्रिटिश, सरकार ने उनका उत्पीड़न किया। उन्होंने ऐसा पूरी चेतना के साथ किया। अपनी पुस्तक ''कृषकों का विद्रोह'' में कपिल कुमार ने शोषित वर्गों के ऊपर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने ''नीचे से इतिहास'' – परिप्रेक्ष्य का उपयोग किया जिसमें यह कहा गया कि उत्तर प्रदेश के उध क्षेत्र में किसानों ने विद्रोह किया था। उन्होंने किसानों के आंदोलनों को वर्ग संबंधों के संदर्भ में भी देखा था।

1980 के दौरान, भारत के विभिन्न भागों में किसानों का आंदोलन देखने को मिला जो कि कृषक आंदोलन से अलग रूप में था। कृषकों की भांति उन्होंने भूमि सुधार की माँग नहीं की तथा जमींदारों द्वारा उत्पीड़न को भी समाप्त करने की माँग नहीं की। क्योंकि ये भूमि सुधारों के लाभार्थी थे तथा राज्य द्वारा अपनाई गयी अन्य नीतियों का लाभ भी इन्हें मिल

रहा था। उनका आंदोलन उन क्षेत्रों में ज्यादा दिखाई दिया जहाँ पर हरित क्रांति का प्रभाव अधिक था जैसे कि पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्रा, गुजरात, कर्नाटक एवं केरल। उनकी माँग सामान्यता पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से संबंधित थी, अर्थात सब्सिडी देना, कर्ज माफी, कृषि उत्पादन की लागत अच्छी देना, बिजली की उपलब्धता में वृद्धि करना, उनके खेतों में मजदूरों की समस्या इत्यादि। जिन विद्वानों ने इन आंदोलनों को मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में देखा है उनका मानना है कि इनका स्वरूप वर्ग चरित्र है तथा इनका संबंध पूँजीवादी राजनीति–अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ा हुआ है। ये आंदोलन मुख्यता अमीर किसानों के है या अमीर ग्रामीण वर्ग के है जिन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था को अपना लिया है।

2.5.2 मजदूर वर्ग आंदोलन

मजदूर वर्ग के आंदोलन का अध्ययन करने के लिये मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य निम्न मुद्दों को उठाता है :– मजदूर वर्ग में वृद्धि, उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति, उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करना जैसे रोटी, कपड़ा और मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि। उन्हें मजदूरी समय पर मिलना, बोनस देना, अपना संगठन बनाने का अधिकार होना, उनके बच्चों के लिए क्रेच की सुविधा मिलना, तथा अन्य कारक जिनसे मजदूर वर्ग का आंदोलन बढ़ता है।

रणजीत दास गुप्ता (1996) ने यह बिन्दु उठाया कि मार्क्सवादी लेखकों ने मजदूर वर्गों के कुछ प्रमुख मुद्दों को नहीं उठाया जैसे मजदूरों का संगठन, मजदूरों पर नियंत्रण, वर्ग गठन, नेतृत्व का तरीका, कार्यस्थल एवं सामुदायिक जीवन के बीच संबंध इत्यादि। वे यह भी रेखांकित करते हैं कि मार्क्सवादी विचारकों ने संस्कृति एवं जेन्डर के मुद्दे की अनदेखी की है। जैन बेमैन का अध्ययन यह दर्शाता है कि भारत में मजदूर वर्ग में काफी वृद्धि हुई है जिसे उसने आजाद मजदूर वर्ग कहा है। इस वर्ग को भी मार्क्सवादी अवधारणा द्वारा भारत में काफी महत्व नहीं दिया गया है।

2.6 भारतीय राज्य

राज्य किसी भी देश में स्वतंत्र एवं सार्वभौम–राजनीतिक संस्था है। जैसा कि आपने इकाई एक में पढ़ा है, उदारवादी उपागम जिस पर व्यवहारवादी आंदोलन का आर्थिक प्रभाव पड़ा, उसने राज्य को सार्वभौम राजनीतिक संस्था माना था। लेकिन मार्क्सवादी, राज्य की राजनीतिक अध्ययन के लिए, राज्य को एक महत्वपूर्ण संस्था मानते हैं। मार्क्सवादियों का मानना है कि राज्य पूँजीपति वर्ग का हथियार है। यह उदारवादी अवधारणा द्वारा दिये गये शब्द से बिल्कुल भिन्न है। उदारवादी अवधारणा राजनीतिक व्यवस्था में मतभेदों के बीच आम सहमति को दर्शाता है तथा राजनीतिक व्यवस्था स्थायी रहती है। जबकि मार्क्सवादी अवधारणा राज्य को निम्न मानदंडों पर विश्लेषित करती है। (1) यह राज्य को वर्ग हितों का प्रतिनिधि मानती है तथा यह मानती है कि किस प्रकार से राज्य पर विभिन्न वर्गों का नियंत्रण रहता है एवं ये वर्ग राज्य की नीतियों को भी प्रभावित करते हैं। (2) यह इस बात को भी देखने का प्रयास करती है कि किस प्रकार से राज्य अपनी नीतियाँ इन वर्गों के लिए बनाती है। (3) यह राज्य के विकास को पता लगाने का प्रयास करती है। (4) यह राज्य के वैचारिक आधार का भी पता लगाती है। (5) तथा, यह राज्य की नीतियों को अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था को जोड़कर देखती है, विशेषकर वित्तीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष इत्यादि। इन मापदंडों के आधार पर मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य यह समझने की कोशिश करता है कि वह क्या है, 'किसी देश के राज्य की प्रकृति या भारतीय राज्य की प्रकृति इत्यादि।

मार्क्सवादी अवधारणा का प्रयोग मार्क्सवादी राजनीतिक दलों एवं शिक्षाविदों द्वारा किया गया है। भारत में प्रमुख रूप से तीन प्रकार की कम्युनिस्ट पार्टियाँ है जो कि मार्क्सवादी विचारधारा का अनुसरण करती है। सी.पी.आई, सी.पी.आई (एम.) तथा अन्य नक्सलवादी पार्टियाँ, जो कि भारतीय राज्य की परिभाषा मार्क्सवादी अवधारणा पर करते हैं। हालांकि इन तीनों में बहुत अंतर है लेकिन इनका राज्य के चरित्र को लेकर, समान अवधारणा है। इनका मानना है कि भारतीय राज्य के अंदर विभिन्न वर्गों का आतंरिक संबंध है तथा इसका संबंध विदेशी पूँजी या साम्राज्यावाद के साथ भी है, जो कि अंतर्राष्ट्रीय वित्तिय संस्थाओं का प्रतिनिधि करती है।

सी.पी.एम के अनुसार भारतीय राज्य बुर्जुआ राज्य है, अर्थात् यह पूँजीपति एवं जमींदारों के हितों को पूरा करने के लिए है एवं इसका संबंध विदेशी पूँजी से है। सी.पी.आई के अनुसार, भारतीय राज्य एक राष्ट्रीय बुर्जुआ राज्य है, जो विदेशी पूँजी के साथ गठजोड़ करता है। जबकि विभिन्न नक्सली समूह राज्य को पूँजीपतियों का प्रतिनिधि मानते हैं जो कि विदेशी पूँजी के हितों की रक्षा करती है। मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हुए राजनीतिक विचारक सी.पी. भॉभरी (1989) ने भारतीय राज्य का विश्लेषण भारत में पूँजीवाद के विकास के संबंध में किया है तथा राज्य वर्ग अंतर्विरोध एवं समाज में विवाद का भी कारण है। विवाद की स्थिति में, भारतीय राज्य अधिकारकवाद की तरह व्यवहार करते है। राज्य विभिन्न वर्गों के मुद्दों को सुलझाते समय अपनी कमजोरी प्रदर्शित करता है। यह कमजोरी ही उसे साम्राज्यवादी ताकतों के दबाव में आने का प्रतीक मानी जाती है। राज्य के अंदर ही साम्राज्यवादी ताकतों के समर्थक मौजूद है। भारतीय राज्य परंपरागत रूप से प्रचलित सामाजिक ढ़ाँचा जैसे जाति, तथा धार्मिक समूहों से चुनौती का सामना करता है। विवेक छिब्बर ने अपनी किताब ''लॉक्ड इन पीस'' में यह चर्चा की है कि किस प्रकार से नेहरू के शासनकाल में भारतीय उद्योगपति औद्योगिक नीतियाँ बनाने में हस्तक्षेप करते थे। उनका यह भी तर्क था कि भारतीय पूँजीपति वर्ग राज्य प्रायोजित विकास के पक्ष में नहीं थे। वे निजी क्षेत्र के पक्ष में थे या फिर पूँजीवाद और बाजार नियोजित विकास के पक्ष में थे।

वर्ग राजनीति का महत्व जैसा कि मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य ने प्रतिपादित किया तथा इसका राज्य पर प्रभाव गैर–मार्क्सवादी विद्वानों ने पूरी तरह से खारिज कर दिया था। उदाहरण के लिये रूडोल्फ एवं रूडोल्फ ने अपनी पुस्तक ''इन परस्यूट ऑफ लक्ष्मी'' में यह दलील दी कि भारत में वर्ग राजनीति की कमी है क्योंकि यहाँ पर संगठित क्षेत्र के मजदूर बहुत कम है तथा उनका भारत की अर्थव्यवस्था में बहुत छोटा हिस्सा है। भारत में राज्य तीसरे कर्ता के रूप में कार्य करता है इनमें एक निजी पूँजी तथा दूसरा संगठित मजदूर है। भारत में राज्य की केन्द्रिय भूमिका है। आप यह नोटिस कर सकते है कि यह मार्क्सवादी अवधारणा के विपरीत है जिसने भारतीय राज्य का पूँजीपति वर्ग के साथ गठजोड़ बताया था।

अभ्यास प्रश्न 2

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) मार्क्सवादी अवधारणा के अनुसार आप वर्ग संबंधों का अध्ययन किस प्रकार से करेंगे?

.....

.....

.....

2) भारत राज्य की प्रकृति का विश्लेषण आप कैसे करेंगे?

.....

.....

.....

.....

.....

3) मार्क्सवादी धारणा के अनुसार आप वर्ग आंदोलन की व्याख्या किस प्रकार करेंगे।

.....

.....

.....

.....

.....

2.7 सारांश

मार्क्सवादी अवधारणा समाज का विश्लेषण करने का एक तरीका है, जिसमें राजनीति भी शामिल है। यह धारणा मार्क्सवाद पर आधारित है। यह समाज में व्याप्त विभिन्न मुद्दों को समझने के लिए द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत का प्रयोग करती है। इस सिद्धांत के अनुसार उत्पादन के संबंधों में बदलाव उत्पादन के साधनों का वितरण एवं संसाधनों का वितरण समाज में भी बदलाव लाता है। दो प्रकार की मार्क्सवादी धारणा है, क्लासिकल मार्क्सवादी धारणा एवं नव–मार्क्सवादी अवधारणा। अधीनस्थ अवधारणा एक प्रकार से नव–मार्क्सवादी अवधारणा है। क्लासिकल मार्क्सवादी अवधारणा गैर–वर्ग की जगह पर वर्ग को प्राथमिकता देती है या फिर आधारभूत ढ़ाँचे के ऊपर प्राथमिकता देती है।

नव–मार्क्सवादी अवधारणा गैर–वर्गीय कारकों को ज्यादा महत्व देती है जैसे कि संस्कृति, जाति, भाषा, धर्म, इत्यादि। वर्ग के साथ गैर–आर्थिक कारक भी समान रूप से महत्वपूर्ण माने जाते हैं। मार्क्सवादी अवधारणा जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए जानी जाती है वह सीमा रेखा से पार है। भारत में मार्क्सवादी अवधारणा जिस विषय का अध्ययन करती है उसमें वर्ग गठन एवं वर्ग गठजोड़, किसानों के आंदोलन, मजदूरों के आंदोलन तथा भारतीय राज्य की प्रकृति शामिल है।

2.8 संदर्भ सूची

उपाध्याय, कैरोल, (2016), *रिइंजरिनयरिंग इंडिया : वर्क, कैप्टिल, क्लास इन एन ऑफ शोर इकॉनमी,* दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

कपिल कुमार, (1984), *पीसेंटस इन रिवोल्ट : टेनेंटस, लैंडलोर्डस, काँग्रेस एंड राज इन औध*, 1986–1992, नई दिल्ली.

गुप्ता, रंजीता दास, (1996), *इंडियन वर्किंग क्लास एंड सम रिसेन्ट हिस्टोग्राफिकल इश्यूस ई. पी. डब्ल्यू.*

गुहा, रंजीत, (1983), *ऐलिमेंट्री अस्पेक्टस ऑफ पीसेंट इनसर्जनसी इन कॉलोनियल इंडिया* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

छिब्बर, विवेक, (2004), *लॉक्ड इन प्लेस : स्टेट बिलडिंग एंड लेट इंडस्ट्रीयलाइजेशन* तुलिका प्रकाशन, दिल्ली.

पटनायक, उत्सा, (1987), *पीसेंट क्लास डिफरेनसिएशन : एक स्टडी इन मेथड वीद रेफेरेंस टू हरियाणा*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

ब्रीमन, जान, (1996), *वर्किंग इन इंडिया'स इनफोरमल इकॉनमी*, कैम्ब्रोज यूनिवर्सिटी प्रेस.

ब्रास पॉल, (2000), *पीसेंट्स पोप्यूलिजम एंड पोस्ट मॉर्डनिज्म* फ्रैक कास लंदन.

भांभरी, सी. पी. (1989), दि इंडियन स्टेट : कंफिल्कट एंड कंन्ट्राडिक्शन, जोया हसन, एस. एन.झा एण्ड रशीददीन खान (संकलित), *द स्टेट पोलिटिकल प्रोसेस एण्ड आइडेंटिटिः रेफ्लेकशन्स ऑन मॉर्डन इंडिया।* सेज प्रकाशन, नई दिल्ली.

रूडोल्फ एण्ड रूडाल्फ, (1987), *पोलिटिकल इकॉनमी ऑफ इंडियन स्टेट*, ओरियंट लोंग मेन, हैदराबाद.

सिंह, जगपाल, *कैप्टिलिजम एंड डिपेंडेंस : अग्ररेरियन पोलिटिक्स इन वेस्टर्न*, उत्तर प्रदेश, 1951–1991 – मनोहर नई दिल्ली

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) मार्क्सवादी अवधारणा समाज की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करती है तथा सामाजिक संबंधों वर्गों को परिभाषित करता है एवं संसाधनों के वितरण एवं उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण की भी बात करता है।

2) क्लासिकल मार्क्सवादी अवधारणा गैर–वर्गीय मुद्दों के ऊपर वर्ग को प्राथमिकता देती है जैसे संस्कृति, जाति, धर्म, राजनीति इत्यादि। नव–मार्क्सवादी धारणा जबकि वर्ग एक गैर–वर्ग दोनों मुद्दों को तरजीह देती है। यह इस बात को रेखांकित करती है कि वर्ग, जाति, धर्म, संस्कृति भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है एवं कभी–कभी वर्ग स्वायत्ता भी।

3) उदारवादी अवधारणा सार्वभौम राजनीतिक संस्थाओं के लिए राजनीतिक व्यवस्था के प्रयोग को प्राथमिकता देती है। यह इस बात को तर्क देती है कि व्यवस्था में विभिन्न कारक आपस में मेल मिलाप करते हैं, विवाद करते हैं तथा उसके बाद आम सहमति पर पहुँचते है। मार्क्सवादी धारणा राजनीतिक व्यवस्था की बजाय राज्य को प्राथमिकता देती है। इसके अनुसार, राज्य पूँजीपति वर्गों के साथ गठजोड़ करता है। यह वर्ग मतभेदों को दूर करने में भेदभाव करता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1) मार्क्सवादी अवधारणा का प्रयोग वर्ग संबंधों को जानने के लिये किया जाता है। संसाधनों के ऊपर किसका मालिकाना हक है, किस वर्ग का उस पर नियंत्रण है तथा कौन सा वर्ग इनसे वंचित है। कौन उत्पादन की प्रक्रिया में हिस्सा लेता है, और किस प्रकार उत्पादन को वितरित किया जाता है। यह नये वर्गों के उदय एवं पुराने वर्गों के

लुप्त होने को भी समझता है।

2) भारतीय राज्य की प्रकृति मार्क्सवादी अवधारणा के अनुसार, वर्गों को विश्लेषित करने एवं उनके बीच संबंधों की व्याख्या करने में की जाती है। यह भारतीय राज्य का अंतर्राष्ट्रीय पूँजी के साथ संबंधों की भी व्याख्या करता है। इन संबंधों के आधार पर विभिन्न कम्युनिस्ट पार्टियों एवं मार्क्सवादी विचारक भारतीय राज्य की प्रकृति का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार भारतीय राज्य, एक बुर्जुआ – जमींदार, राष्ट्रीय – बुर्जुआ के चरित्र का है, जिसका संबंध विदेशी वित्तीय पूँजी के साथ है।

3) मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य वर्ग आंदोलनों का विश्लेषण करता है तथा वर्गों को भी आंदोलनों के साथ जोड़ता है। ये आंदोलन राज्य की नीतियों के ऊपर प्रभाव डालते है तथा आर्थिक कारकों की भी भूमिका वर्गों को एकजुट करने में होती है तथा इस बात को भी व्याख्या करता है कि किस प्रकार गैर–वर्गीय कारक वर्ग आंदोलन के ऊपर प्रभाव डालते हैं।

इकाई 3 गाँधीवादी*

संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 गाँधीवादी धारणा का अर्थ एवं क्षेत्र

3.3 मानवीय मूल्यों की खोज

3.4 भारत में गाँधीवादी धारणा एवं राजनीति विज्ञान

- 3.4.1 सामाजिक एवं सांप्रदायिक सद्भाव
- 3.4.2 सामाजिक आंदोलन
- 3.4.3 दलीय व्यवस्था
- 3.4.4 लोक नीतियों पर गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव

3.5 गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य एवं उत्तर–आधुनिकता

3.6 सारांश

3.7 संदर्भ सूची

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह समझ सकेंगे :

- भारतीय राजनीति को समझने के लिए गाँधीवादी अवधारणा का प्रयोग;
- भारत में गाँधीवादी अवधारणा के अध्ययन के मुद्दों की पहचान करना;
- गाँधीवादी अवधारणा के प्रमुख तथ्यों को जानना; एवं
- भारतीय राजनीति को समझने के लिए गाँधीवादी अवधारणा की तुलना उदारवादी एवं मार्क्सवादी अवधारणा से करना।

3.1 प्रस्तावना

आपने इकाई संख्या एक एवं दो में उदारवादी एवं मार्क्सवादी अवधारणा के बारे में पढ़ा होगा। गाँधीवादी अवधारणा इन दोनों से अलग है। क्योंकि उदारवादी अवधारणा परिवर्तन पर ज्यादा जोर नहीं देती है, यह आम सहमति पर ही ज्यादा जोर देती है। लेकिन इसकी मार्क्सवादी अवधारणा के साथ कुछ समानता है कि दोनों समाज के परिवर्तन की बात करते हैं। जबकि गाँधीवादी अवधारण का प्रयोग राजनीतिकों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, एवं राजनेताओं के द्वारा किया वर्तमान विकास ढांचे की आलोचना करके एक विकल्प देना होता है। चरण सिंह एवं राम मनोहर लोहिया उनमें से हैं। उन्होंने वर्तमान मॉडल की आलोचना की तथा एक वैकल्पिक मॉडल प्रदान किया। गाँधीवादी एवं मार्क्सवादी अवधारणा के बीच कुछ मूलभूत अंतर है। गाँधीवादी अवधारणा अहिंसा, एवं राजनीति में नैतिकता के महत्व को रेखांकित करती है, जबकि, मार्क्सवादी अवधारणा वर्ग संघर्ष में विश्वास रखती है। गाँधीवादी अवधारणा का मानना है कि मजदूरों एवं पूंजीपति वर्गों में एक–दूसरे के प्रति

*प्रोफेसर जगपाल सिंह, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

विश्वास की भावना होनी चाहिए। पूंजीपति वर्ग को ट्रस्टीशिप की स्थापना करनी चाहिए तथा उन्हें अपने धन का बंटवारा करना चाहिए। इससे अमीर एवं गरीब के बीच की दूरी कम होगी।

3.2 गाँधीवादी अवधारणा का अर्थ एवं क्षेत्र

गाँधीवादी अवधारणा सामाजिक यथाशक्ति एवं सत्य को समझने का प्रयास करती है तथा यह एक नये समाज के निर्माण का रास्ता समझने का भी प्रयास करती है। गाँधीवादी सिद्धांतों में सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज, सर्वोदय, लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन, नैतिकता, तथा राम–राज्य शामिल है। अहिंसा का मतलब है किसी दूसरे व्यक्ति को चोट न पहुँचाना। इससे बल्कि स्वयं को नुकसान पहुंचाना है। उपवास द्वारा स्वयं को नुकसान पहुँचा कर उन पर नैतिक अधिकार स्थापित किया जा सकता है जिनके पास सत्ता होती है। आज्ञा उल्लघंन के बिना कोई भी राजनीतिक गतिविधि सम्पन्न नहीं हो सकती है। प्रजातंत्र को इस प्रकार से संरचित होना चाहिए ताकि सभी नागरिक कानून एवं संस्थाओं से सवाल पूछ सके (रमीन जहानबेग्ल्नू, 2018 द दिसऑबीडेयंट इंडियन : टुवार्ड्स ए गाँधीएन फिलॉसिफी आफ डिसेंट, स्पीकिंग, टाईगर, नई दिल्ली)। अहिंसा का प्रयोग नैतिक मूल्यों को प्राप्त करने के लिए होना चाहिए, इसे ही गाँधीवादी सिद्धांतों में सत्याग्रह कहा गया है। गाँधीवादी अवधारणा का अंतिम लक्ष्य स्वराज की स्थापना करना है। इससे राम–राज की स्थापना होगी एवं समाज में भाईचारा बढ़ेगा तथा लोग शांति एवं सद्भाव के साथ रहेंगे। राम–राज्य एक आदर्श समाज होगा जहां लोग स्वयं कानून बनाऐंगे, स्वयं का शासन होगा, जहां पर ग्राम पंचायत या ग्राम सभा का राज होगा। यह एक उच्च नागरिक समाज होगा जहां सभी लोग सद्भाव के साथ रहेंगे एवं सद्भाव की भावना होगी। राम–राज्य में ग्राम पंचायत का कार्य राज्य के कार्य के समान होगा। राम–राज्य या स्वराज में राज्य की भूमिका न्यूनतम होगी, क्योंकि राज्य एक दयनीय संस्था है। जब कोई स्कॉलर सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य का प्रयोग राज्य एवं संस्थाओं के विश्लेषण के लिए करता है तो वह गाँधीवादी अवधारणा का प्रयोग करता है। गाँधीवादी अवधारणा का प्रयोग सामाजिक विज्ञानों के विभिन्न विषयों में किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) गाँधीवादी अवधारणा क्या है? तथा इसके मूल सिद्धांत कौन–कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

2) गाँधीवादी अवधारणा की तुलना उदारवादी एवं मार्क्सवादी अवधारणा के साथ कीजिए।

.....

.....

.....

3.3 मानवीय मूल्यों की खोज

सबसे प्रभावशाली राजनीतिक वैज्ञानिक जिन्होंने गाँधीवादी अवधारणा का प्रयोग भारतीय राजनीति के लिए किया वे रजनी कोठारी हैं। उन्होंने अपने कुछ और बुद्धिजीवियों के साथ लोकायन की स्थापना थी। गेल ओमवेट के अनुसार, लोकायन एक 'गाँधीवादी–समाजवादी' नागरिक समाज संगठन था (रूडॉल्फ एवं रूडॉल्फ)। लोकायन का सदस्य होने के नाते रजनी कोठारी पर गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव पड़ा था। यह उनके शैक्षिक पॉपुलर लेखों में 1970 से ही देखने को मिला है जैसा कि आपने इकाई एक में पढ़ा है, रजनी कोठारी ने व्यवस्थावादी उपागम का प्रयोग, उदारवादी उपागम के साथ भारतीय राजनीति को समझने के लिये की थी। गाँधीवादी अवधारणा का प्रयोग उन्होंने व्यवस्थावादी उपागम की आलोचना की संदर्भ में किया था। उन्होंने कुछ विचारों को फिर से प्रयोग किया जो उन्होंने पहले व्यवस्थावादी उपागम के लिये किया था। जो परिवर्तन पिछले चार दशकों में हुए है उनका व्यवस्थावादी उपागम ने ठीक से विश्लेषण नहीं किया। ये परिवर्तन तकनीक के क्षेत्र में तथा राज्य में देखने को मिलता है। इसका असर समाज पर भी पड़ा है। कई अन्य परिवर्तन जैसे कि जन आंदोलन मानव अधिकार, जन जातीय मुद्दे, संस्थाओं का पतन, व्यक्तिवादी नेताओं का उदय जैसे इंदिरा गाँधी इत्यादि। कोठारी की राय में तकनीक के प्रभाव के कारण, भारतीय राज्य गैर–मानवीय बन गया है, तथा यह लोगों के विरूद्ध कार्य कर रहा है। इसलिए राज्य के लिए मानवीय चेहरे की जरूरत है। इसकी जरूरत इसलिए है ताकि एक नये भारत की खोज में मदद मिल सके। विकास का अलगाववादी मॉडल, जनता का हितैषी नहीं है क्योंकि यह पूंजीवाद के अधीन कार्य करता है। तथा विकल्प गाँधीवादी अवधारणा के रूप में मौजूद है जिसका मानवीय चरित्र है। कोठारी ने यह रेखांकित किया कि, गाँधीवादी अवधारणा पहले की अवधारणाओं से अलग है (कोठारी, Vol 1: x)। गांधी प्रभावित उनका लेखन अपनी पुरानी कृतियों से मतभेद रखता है। वैकल्पिक संरचना जिसका प्रभाव गाँधीवादी दर्शन से अधिक पड़ा था, वह बहुत लोकतांत्रिक है बजाय वर्तमान वेस्ट मिंस्टर मॉडल के। इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार, वेस्ट मिंस्टर मॉडल को भारत में जबरदस्ती लागू किया गया था क्योंकि यह गरीब देश था। इसने कार्यपालिका एवं नौकरशाही को अधिक शक्तियाँ दी, जिससे केन्द्रिकरण को बढ़ावा मिला। इस संदर्भ में अक्सर एक नये संविधान की चर्चा होती रही है। रजनी कोठारी (1988), के अनुसार भारत में जहाँ राज्य के ऊपर टेक्नोलॉजी का कब्जा है। वहाँ पर दो प्रकार के भारतीय हैं। एक ओर लोकतंत्र पर अमीर लोगों ने कब्जा कर लिया है, वहीं दूसरी तरफ यह साम्प्रदायवादी, जातिवादी एवं भ्रष्ट लोगों के लिए खेल का मैदान बन गया है। इस संदर्भ में, जहाँ दल एवं संस्थाऐं अपनी साख गंवा रहे हैं, गैर–दलीय राजनीति द्वेष के सभी हिस्सों में घटित हो रही है। जो विकल्प उभर रहा है वह 'वैकल्पिक' एवं जनता का आंदोलन है।

3.4 गाँधीवादी अवधारणा एवं भारत में राजनीति विज्ञान

राजनीति विज्ञान में, गाँधीवादी अवधारणा द्वारा प्रयोग किया जाने वाला आम विषय सामाजिक आंदोलन एवं सत्याग्रह हैं इसमें भारतीय राज्य की आलोचना, स्वराज की अवधारणा, सांम्प्रदायिक एवं सामाजिक सद्भाव तथा विकेन्द्रीकरण (पंचायती राज संस्थाऐं) या 73वां एवं 74 वां संविधान संशोधन अधिनियम हैं। विकास पर गाँधीवादी प्रभाव एवं बहस, इत्यादि शामिल हैं। गाँधीवादी दृष्टिकोण का प्रयोग गाँधीवादी बुद्धिजीवियों जैसे चरणसिंह, लोहिया एवं अन्य समाजवादी नेताओं पर होने वाले प्रभाव के आकलन करने में होता है। लोहिया एवं चरण सिंह ने औद्योगिकरण पर हमला किया तथा लघु–उद्योगों एवं ग्राम उद्योगों का पक्ष लिया। यद्यपि चरण सिंह गाँधीवादी विचारों से प्रभावित थे, लेकिन वे कुछ

मुद्दों पर उनके असहमत भी थे। उदाहरण के लिये उन्होंने गाँधी के सहकारी कृषि व्यवस्था के सिद्धांत का विरोध किया था। यद्यपि, वे कृषि में सेवाओं की सहकारिता के समर्थक थे। लोहिया पर गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव उनके समाजवादी मॉडल से दिखाई देता है। उन्होंने नेहरूवादी विकास के मॉडल की आलोचना की थी। उनके ऊपर गाँधी के विचारों जैसे कि सविनय अवज्ञा या सत्याग्रह तथा आर्थिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का प्रभाव अत्यधिक पड़ा था। गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार, राज्य मुख्यतौर पर आत्म विहीन मशीन की तरह है जो कि बल पूर्वक साधनों का इस्तेमाल करता है। गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य इस बात को समझने का प्रयास करता है कि राज्य को सुरक्षा प्रदान करने की जरूरत है। वास्तव में वे राज्य के विरोधी नहीं थे, बल्कि वे राज्य का कम उपयोग करने के समर्थक थे। राज्य की भूमिका पंचायती राज संस्थाओं द्वारा भी पूरी की जा सकती है। राज्य को सिर्फ न्यूनतम कार्य करने चाहिए। गाँधीवादी उस लोकतंत्र का समर्थन करते हैं जहाँ लोगों के पास सत्ता हो, तथा वे निर्णय–निर्माण में प्रभावी भूमिका निभा सके, विशेषकर विकेन्द्रीकरण एवं पंचायती राज संस्थाओं द्वारा।

3.4.1 सामाजिक एवं साम्प्रदायिक सद्भाव

गाँधीवादी अवधारणा ने किस प्रकार से सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को समाप्त करने में मदद की है इसका जवाब इतिहासकार भी बार–बार प्रयोग करते है, विशेषकर नौआखली दंगों के संदर्भ में (बाटब्याल, 2005)। नौआखली में, गाँधी जी ने अपने प्रयासों से दंगों पर काबू पाने में सफलता हासिल की थी। गाँधी ने धर्म को राजनीति में इस्तेमाल कर तथा हिंसा पर काबू पाने में इसके प्रभाव की महत्ता बताई। इतिहासकारों ने गाँधीवादी विधि को नौआखाली सांप्रदायिक सद्भाव कायम करने के अध्ययन में प्रयोग किया। इसके बावजूद कि गाँधी जी की आलोचना हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ने की थी। भीखू पारेख ने नौआखली दंगों को आंतरिक–संबंधों (व्यक्तिगत पीड़ा, भूख हड़ताल आदि) की दृष्टि से देखा था और उसकी राजनीतिक सफलता सांप्रदायिक सद्भाव को प्राप्त करने में मिली थी। गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य यह विश्लेषण करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार से विभिन्न समुदायों को सांप्रदायिक परिस्थिति से निकालकर एक साथ लाया जा सकता है।

3.4.2 सामाजिक आन्दोलन

1974 में गुजरात में आन्दोलन का अध्ययन करने में जो कि मूल्य वृद्धि के विरूद्ध था, घनस्याम शाह ने सत्याग्रह की भूमिका का जिक्र किया है खासकर लेवी के खिलाफ। इस आंदोलन को छात्रों ने चलाया था जिनकी प्रमुख माँग थी मेस में खाने के बिल में वृद्धि होना तथा भ्रष्टाचार काला–बाजारी, मंहगाई, गैर–राष्ट्रीयकरण, नागरिक स्वतंत्राऐं भी इसमें शामिल हो गयी थी। इस आंदोलन ने मुख्यमंत्री चिमन भाई पटेल को इस्तीफा देने को मजबूर कर दिया था। बाद में यह आंदोलन जे. पी. के आंदोलन से भी जुड़ गया था। 1975 में इसी आंदोलन ने द्वेश में आपातकाल थोपने की भी पृष्ठभूमि प्रदान की थी। कुछ विद्धान किसानों के आंदोलन में सत्याग्रह एवं अहिंसा के महत्व को भी रेखांकित करते हैं, एवं भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन में भी। गाँधीवादी सुब्बा राव और पी.वी. राजगोपाल और जयप्रकाश नारायण ने चंबल के डकैतों को समर्पण करने के लिए गाँधीवादी तरीकों का प्रयोग किया। उन्होंने उनसे हिंसा समाप्त करके अहिंसा का रास्ता अपनाने, युवाओं को जे. पी. आंदोलन जो कि भ्रष्टाचार के खिलाफ था उसमें शामिल होने, तथा आपात काल के विरूद्ध उनको लामबंद किया था। बालगोपाल ने आदिवासी लोगों को उनकी जमीन पर अतिक्रमण करने के विरूद्ध एकता परिषद का गठन किया तथा उन्हें उनकी जमीन का हक दिलाया। एकता परिषद भी गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित थी। इसके ऊपर भी अहिंसा एवं

असहयोग का असर हुआ था। इसने राज्य एवं समाज को एक साथ लाने की कोशिश की। 1980 में एक संयुक्त कार्यदल का गठन किया गया। इसने दिग्विजय एवं कॉंग्रेस सरकार को भूमि सुधार करने के लिए दबाव डाला। लगभग तीन दशकों में 1990 से लेकर अब तक एकता परिषद ने कई महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाया जैसे कि मजदूरी, प्रवसन, बंधुआ मजदूर, पुनर्वास, रोजगार इत्यादि। एकता परिषद ने बुंदेलखंड और छत्तीसगढ़ में भी वैकल्पिक नये सामाजिक आंदोलन शुरू किये थे। इसने लंबा मार्च भी आयोजन किया, जैसे पद यात्रा, धरना, चक्का जाम, भूमि सत्याग्रह इत्यादि। इसमें एम. पी. एवं दिल्ली के किसान शामिल थे (पाई 2010)।

3.4.3 दलीय व्यवस्था

अपने विचारों को एक लेख में कॉंग्रेस व्यवस्था के बारे में अभिव्यक्त करने के लिए रजनी कोठारी ने दिसंबर 1974, 14 (2) के एशियन सर्वे में लेख प्रस्तुत किया था। उनका विचार था कि सरकार बिना जमीनी स्तर संगठन के काम नहीं कर सकती है। उत्तर–नेहरूवादी काल में, कॉंग्रेस पार्टी में यह कमी दिखाई दे रही थी। जो भी जन आंदोलन हो रहे थे वो भी चुनावी चैनल या विधायिका के बाहर हो रहे थे। ये जनता के साथ अपना संपर्क साध रहे थे। संगठन के अभाव में बाहरी ताकतें अपनी जड़ें मजबूत कर रही थी। यदि कॉंग्रेस पार्टी जमीनी स्तर पर कार्यकर्ताओं को बनाने में असफल होती है तो यह विरोधी दल करने में सफल होगा। यदि हम पार्टी संगठन को पुनःबहाल नहीं कर सके तो चुनाव अपनी साख खो देंगे।

3.4.4 लोक नीतियों पर गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव

जनता सरकार नेहरूवादी नीतियों के मॉडल को बदलने का प्रयास कर रही थी, यह उनके विकास का मॉडल, कृषि क्षेत्र में निवेश को तरजीह देना न कि उद्योगों में कृषि क्षेत्र में निवेश से रोजगार को बढ़ावा देना, तथा अन्य नीतियाँ, भारत एक ऐसा राष्ट्र बनने की कोशिश कर रहा था जो कि किसानों का हो बजाय कि नौकरशाहों का, ये सब गाँधीवादी नीतियों के प्रभाव के कुछ उदाहरण है। ऐसे मुद्दे गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य से प्रभावित हुए हैं। चरण सिंह ने नेहरू के मॉडल की आलोचना की थी तथा उन्होंने कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता दी थी। ग्राम समुदाय तथा लघु उद्योग भी गाँधीवादी ढाँचे में देखा जा सकता है। उन्होंने नेहरू पर यह आरोप लगाया कि नेहरू ने भारत को गैर–औद्योगिक बना दिया है। गाँधीवादी अवधारणा का प्रयोग करते हुए राहुल रामागुंडम (2008) ने जीवन में भौतिकता एवं नैतिकता को महत्वपूर्ण माना। भौतिकता नेहरू की देन थी जबकि नैतिकता गाँधी जी की देन थी। गाँधीवादी सामाजिक आर्थिक नीतियों के आकलन में सामान रूप से कमी है।

3.5 गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य एवं उत्तर–आधुनिकता

अपनी पुस्तक *पोस्ट–मॉर्डन गाँधी एडं अदर एस्सेज* में रूडोल्फ एवं रूडोल्फ ने गाँधी को उत्तर–आधुनिकता का चिंतक बताया है। उन्होंने गाँधी पर परंपरागत नेता के सामान्य विचारों को भी चुनौती दी थी। उनकी राय में, गाँधी जी एक उत्तर–आधुनिकवादी थे। उनके तर्कों को समझने के लिए हमें उत्तर–आधुनिक की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं की पहचान करना जरूरी है। ये विशेषताएं इस प्रकार है :– किसी एक समुदाय को या उसके किसी एक भाग को प्राथमिकता देना, सत्य एक वास्तविकता है एवं संदर्भ की महत्ता है। इन लक्षणों के संबंध में, रूडोल्फ एवं रूडोल्फ ने भी गाँधी को उत्तर–आधुनिकता की श्रेणी में रखा है। गाँधी की पुस्तक 'हिन्द स्वराज' (1999) और माइ एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ का

उदाहरण देते हुए उन्होंने यह तर्क दिया कि गाँधी के लिए 'सत्य' एक प्रयोग के समान है। गाँधी का सामाजिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण पर दबाव भी उनके उत्तर–आधुनिक होने को प्रभावित करता है।

अभ्यास प्रश्न 2

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) रजनी कोठारी के ऊपर गाँधीवादी धारणा के प्रभाव की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारतीय राजनीति को समझने के लिए गाँधीवादी अवधारणा का किस प्रकार प्रयोग किया गया है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) गाँधीवादी अवधारणा का किन प्रमुख मुद्दा पर जोर है?

.....

.....

.....

.....

.....

3.6 सारांश

गाँधीवादी अवधारणा समाज में हो रहे परिवर्तन की दृष्टि को समझने का रास्ता है। गाँधीवादी अवधारणा ने शिक्षाविदों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं तथा राजनीतिज्ञों को भी प्रेरित किया। इस विचार धारा के अनुयाइयों ने गाँधी के प्रमुख सिद्धांतों जैस सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज, राम–राज्य, सर्वोदय इत्यादि को अपनाया था। इन्हें भारतीय राजनीति में लागू करने का भी प्रयास किया। जिन मुद्दों ने राजनीति वैज्ञानिकों को अधिक आकर्षित किया वे है विकेन्द्रीकरण, लोकतंत्र में शिष्टता, सामाजिक सद्भाव, ग्रामीण समाज का महत्व, कृषि को प्राथमिकता इत्यादि। उन्होंने गाँधीवादी मॉडल का प्रयोग नेहरूवादी मॉडल की आलोचना करने के लिए किया है। गाँधीवादी समर्थकों ने जनता को लामबंद करने के लिए, गाँधीवादी तरीकों जैसे, सत्याग्रह, भूख हड़ताल इत्यादि का सहारा लिया था।

3.7 संदर्भ सूची

ई.पी.डब्ल्यू, (2017), स्पेशल इश्यूज ऑफ लाइफ एंड आइडिया ऑफ लोहिया, खंड 45, नं. 40, 2–8 अक्टूबर.

कोठारी, रजनी, (1975), *डेमोक्रेटिक पॉलिटि एंड सोशल चेंज इन इंडिया : क्राइसिस एंड ऑपरच्यूनिटिस,* बंबई, अलाइड प्रकाशन.

कोठारी, रजनी, (1989), *पोलिटिक्स एंड दि पीपल : इन सर्च ऑफ ह्यूमेन इंडिया,* दिल्ली, अजन्ता प्रकाशन, खंड, I-II.

पाई, सुधा, (2010), *डेवलपमेंटल स्टेट एंड द दलित क्योशचन इन मध्य प्रदेश कांग्रेस रेस्पौंस,* नई–दिल्ली, राउटसेज

पारेख, भीखू, (1989) *कॉलोनियलिज्म, ट्रांजिशन एंड रिर्फोम : एन एनालयषिस ऑफ गाँध ी'स पॉलिटिकल डिसर्कोस,* नई–दिल्ली.

बटब्याल, राकेष, (2005) *'कम्यूनलिज्म इन बंगाल, फ्रॉम फेमिन टू नौखाली, 1943–47,* सेज प्रकाशन, नई–दिल्ली.

रमागुन्डम, राहुल, (2008), *गाँधी'स खादी : ए हिस्टरी ऑफ कॉन्टेंशन एंड कॉक्सिलिएशन,* हैदराबाद, ओरियंट लोंगमैन.

रूडोल्फ एवं रूडोल्फ, (2008), *एक्सप्लेनिंग इंडियन डेमोक्रेसी : ए फिफ्टी–ईयर परस्पेक्टिव, द रेल्म ऑफ आइडियास इन्क्यारी एंड थ्यारी,* खंड 1.

रूडोल्फ एवं रूडोल्फ, (2006), *पोस्टमॉर्डन गाँधी एंड अदर ऐसेस,* नई–दिल्ली, ऑक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस.

शाह, घनस्याम, (1974), *दि अपराइजिंग इन गुजरात,* ई.पी.डब्ल्यू, अगस्त 9.

सिहं, जगपाल, (2014), लेगेसीस ऑफ डा. अम्बेडकर एंड हिज कॉन्टेम्पोरेरिस इन उत्तर प्रदेशः एक कॉम्पेरिशन ऑफ अम्बेडकर चरण सिंह एंड लोहिया बिस्वमोय पति (संकलित), *इनवोकिंग अम्बेडकर : कन्ट्रीब्यूशन, रिसेप्शन्स, लेगेसिस,* दिल्ली, प्राईमस बुक्स.

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) गाँधीवादी धारणा राजनीति की व्याख्या करने का एक तरीका है। इसके मूलभूत सिद्धांत सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, स्वराज, राम–राज्य सत्ता का विकेंन्द्रिकरण, नैतिकता, सामाजिक सद्भाव, ट्रस्टीशिप इत्यादि है।

2) गाँधीवादी धारणा राजनीति को समझने की विधि एवं सामाजिक परिवर्तन का दृष्टिकोण है। उदारवादी दृष्टिकोण एक विविध उपागम है जो कि राजनीतिक व्यवस्था में आम सहमति बनाने पर मुख्य जोर देता है। गाँधीवादी दृष्टिकोण का मार्क्सवादी विचारधारा के साथ समानता है। दोनों का सिद्धांत राजनीति को समझने एवं समाज में परिवर्तन लाना है। लेकिन उनमें कुछ अंतर भी है। मार्क्सवादी सिद्धांत वर्ग संघर्ष में विश्वास करता है जबकि गाँधीवादी सामाजिक सद्भाव एवं नैतिकता में विश्वास रखता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1) रजनी कोठारी ने अपने प्रारंभिक वर्षों में भारतीय राजनीति को समझने में व्यवस्थावादी उपागम को अपनाया। लेकिन उन्होंने इस व्यवस्था को उन्होंने सामाजिक परिवर्तन के लिये ठीक नहीं माना। इसलिए उनकी सोच में परिवर्तन हुआ और उन्होंने गाँधीवादी दर्शन को अपनाया। अपने कुछ साथियों के साथ उन्होंने लोकायन की स्थापना की जो कि एक नागरिक समाज संगठन था।

2) गाँधीवादी दृष्टिकोण ने उस विकास के मॉडल की आलोचना की जिसकी प्राथमिकता भारी उद्योग थे। इसने वैकल्पिक मॉडल को अपनाने की महत्वता को रेखांकित किया जिसमें, लघु–उद्योगों को बढ़ावा देना, वस्त्र उद्योग को बढ़ावा, ग्राम समाज, तथा सत्ता का विकेन्द्रिकरण शामिल है। यह गाँधीवादी उपायों जैसे सत्याग्रह, नैतिकता, आत्म–त्याग, की भावना को भी महत्व देता है। यह गाँधीवादी सिद्धांतों जैसे सामाजिक सद्भाव, विकेन्द्रीकरण, आत्म–नियंत्रण, तथा राम–राज्य को महत्वपूर्ण मानता है।

3) सबसे प्रमुख मुद्दे जो गाँधीवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत अध्ययन किये जाते है वे हैं विकेन्द्रीकरण या पंचायती राज संस्थाऐं, सत्याग्रह की भूमिका, अहिंसा, सामाजिक सद्भाव विकास के मॉडल की आलोचना एवं वैकल्पिक मॉडल प्रदान करना, गाँधी का प्रभाव बुद्धिजीवियों, राजनीतिज्ञों एवं भारत में समाजवाद पर पड़ना।